पशुओं में तो होता ही नहीं। ईर्षा एक संकर भाव है जिसकी सम्प्राप्ति आलस्य, अभिमान और नैराश्य के योग से होती है। जब दो बच्चे किसी खिलौने के लिए झगड़ते हैं तब कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि एक उस खिलौने को लेकर फोड़ देता है जिससे वह किसी के काम में नहीं आता। इससे अनुमान हो सकता है कि उस लड़के के मन में यही रहता है कि चाहे वह खिलौना मुझे मिले या न मिले दूसरे के काम में न आवे अर्थात् उसकी स्थिति मुझ से अच्छी न रहे। ईर्षा पहले पहल इसी रूप में व्यक्त होती है।

ईर्षा प्राप्ति की उत्तेजित इच्छा नहीं है। एक के पास कोई वस्तु है और दूसरे के पास नहीं है तो वह दूसरा व्यक्ति इस बात के लिए तीन प्रकार से दुःख प्रकट कर सकता है—

१—क्या कहें हमारे पास भी वह वस्तु होती!

२—हाय! वह वस्तु उसके पास न होकर हमारे पास होती तो अच्छा था।

३—वह वस्तु किसी प्रकार उसके हाथ से निकल जाती, चाहे जहाँ जाती।

इन तीनों वाक्यों को ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ेगा कि इनमें दूसरे व्यक्ति की ओर जो लक्ष्य है उसे क्रमशः विशेषत्व प्राप्त होता गया है और वस्तु की ओर जो लक्ष्य है वह कम होता गया है। पहले वाक्य से जो भाव झलकता है वह ईर्षा नहीं है, साधारण स्पर्द्धा अर्थात् लाभ की उत्तेजित इच्छा का एक अच्छा रूप है। उसमें वस्तु की ओर लक्ष्य है, व्यक्ति की ओर नहीं। ईर्षा व्यक्तिगत है और स्पर्द्धा वस्तुगत। दूसरे वाक्य में ईर्षा का कुछ, और तीसरे में पूरा आभास है। इन दोनों में से एक (दूसरे) में दूसरे को वञ्चित न रख सकने का दुःख गौण और दूसरे (तीसरे) में प्रधान वा एकान्त है।

स्पर्द्धा में किसी सुख अर्थात् ऐश्वर्य्य, गुण वा मान से किसी व्यक्तिविशेष को सम्पन्न देख अपनी त्रुटि पर दुःख होता है, फिर प्राप्ति की एक प्रकार की उद्वेगपूर्ण इच्छा उत्पन्न होती है, वा यदि इच्छा पहले से होती है तो उस इच्छा को उत्तेजना मिलती है। इस प्रकार की वेगपूर्ण इच्छा वा इच्छा की उत्तेजना अन्तःकरण की उन प्रेरणाओं में से है जो मनुष्य को अपने उन्नति-साधन में तत्पर करती है। इसे कोई संसार को सच्चा समझने वाला बुरा नहीं कह सकता। यह उत्तेजना ऐश्वर्य्य, गुण वा मान के किसी चित्ताकर्षक रूप वा प्रभाव के साक्षात्कार से उत्पन्न होती है और कभी कभी उस ऐश्वर्य्य गुण वा मान को धारण करने वाले की पूर्वस्थिति के परिज्ञान से बहुत बढ़ जाती है। किसी अपने पड़ोसी वा मित्र की विद्या का चमत्कार और आदर देख विद्याप्राप्ति की इच्छा उत्तेजित होती है और यह जान कर कि पहले वह एक बहुत साधारण बुद्धि वा वित्त का मनुष्य था, यह उत्तेजना आशा-प्रेरित होकर और भी बढ़ जाती है। प्राप्ति की इस उत्तेजित इच्छा के लिए सम्पन्न व्यक्ति ऐसा मूर्त्तिमान् और प्रत्यक्ष आधार हो जाता है जिससे अपनी उन्नति वा सम्पन्नता की भी आशा बँधती है और कार्य्यक्रम की शिक्षा मिलती है। किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छावाले को, किसी ऐसे व्यक्ति को देख जिसने अपने पुरुषार्थ से उस वस्तु को प्राप्त किया हो, कभी कभी बड़ा सहारा हो जाता है और वह सोचता है कि 'जब उस मनुष्य ने उस वस्तु को प्राप्त किया तब क्या मैं भी नहीं कर सकता?'। ऐसे सम्पन्न व्यक्ति की ओर जो इच्छुक वा स्पर्द्धावान् का बार बार ध्यान जाता है वह उसकी स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्त्तन करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी स्थिति में परिवर्त्तन करने के लिए। स्पर्द्धा में अपनी कमी वा त्रुटि पर दुःख होता है, दूसरे की सम्पन्नता पर नहीं। स्पर्द्धा में दुःख का विषय है "मैंने उन्नति क्यों नहीं की?" और ईर्षा में दुःख का विषय है "उसने उन्नति क्यों की?"। स्पर्द्धा संसार में गुणी, प्रतिष्ठित और सुखी लोगों की संख्या में कुछ बढ़ती करना चाहती है और ईर्षा कमी।

ऊपर के विवरण से यह बात झलक गई होगी कि ईर्षा एक अनावश्यक वस्तु है, इससे उसकी

गणना मूल मनोवेगों में नहीं हो सकती। यह यथार्थ में कई भावों के रासायनिक मिश्रण से संघटित एक विष है। जब किसी विषय में अपनी स्थिति को रक्षित रख सकने वा समुन्नत कर सकने के निश्चय में अयोग्यता वा आलस्य आदि के कारण कुछ कसर रहती है तभी इस इच्छा का उदय होता है कि किसी व्यक्तिविशेष की स्थिति उस विषय में हमारे तुल्य वा हम से बढ़ कर न होने पावे। यही इच्छा बढ़ कर द्वेष में परिवर्त्तित हो जाती है और तब उस दूसरे व्यक्ति का अनिष्ट, न कि केवल उसी विषय में बल्कि प्रत्येक विषय में वांछित हो जाता है। वैर और द्वेष में अन्तर यह है कि वैर अपनी किसी वास्तविक हानि के प्रतिकार में होता है, पर द्वेष अपनी किसी हानि के कारण वा लाभ की आशा से नहीं किया जाता।

यह बात ध्यान देने की है कि ईर्षा व्यक्तिविशेष से होती है। यह नहीं होता कि जिस किसीको ऐश्वर्य्य, गुण वा मान से सम्पन्न देखा उसी से ईर्षा हो गई। ईर्षा उन्हीं से होती है जिनके विषय में यह धारणा होती है कि लोगों की दृष्टि हमारे साथ साथ उन पर भी अवश्य पड़ेगी वा पड़ती होगी। अपने से दूरस्थ होने के कारण अपने साथ साथ जिन पर ध्यान जाने का निश्चय नहीं होता उनके प्रति ईर्षा नहीं उत्पन्न होती। काशी में रहनेवाले किसी धनी को अमेरिका के किसी धनी की बात सुन कर ईर्षा नहीं होगी। हिन्दी के किसी कवि को इटली के किसी कवि का महत्त्व सुन कर ईर्षा नहीं होगी। सम्बन्धियों, बाल-सखाओं, सहपाठियों और पड़ोसियों के बीच ईर्षा का विकाश अधिक देखा जाता है। लड़कपन से जो दो आदमी एक साथ उठते बैठते देखे गए हैं उन्हींमें से कोई एक दूसरे की बढ़ती से जलता हुआ भी पाया गया है। यदि दो साथियों में से कोई किसी अच्छे पद पर पहुँच गया तो वह इस उद्योग में देखा जाता है कि दूसरा किसी अच्छे पद पर न पहुँचने पावे। प्रायः अपनी उन्नति के गुप्त बाधकों का पता लगाते लगाते लोग अपने किसी बड़े पुराने मित्र तक पहुँच जाते हैं। जिस समय संसर्ग-सूत्र में बाँध कर हम औरों को अपने साथ एक पंक्ति में खड़ा करते हैं उस समय सहानुभूति, सहायता आदि की सम्भावना आरोपित होने के साथही साथ ईर्षा और द्वेष की सम्भावना की नीवँ भी पड़ जाती है। अपने किसी आचरण से हम भलाई ही भलाई की सम्भावना का सूत्रपात करें और इस प्रकार भविष्य के अनिश्चय में बाधा डालें यह कभी हो नहीं सकता। भविष्य की अनिश्चयात्मकता अटल और अजेय है, अपनी लाख विद्या बुद्धि से भी हम उसे बिलकुल हटा नहीं सकते।

अब ध्यान देने की बात यह निकली कि ईर्षा के सञ्चार के लिए ईर्षा करनेवाले और ईर्षा के पात्र के अतिरिक्त स्थिति पर ध्यान देनेवाले समाज की भी आवश्यकता है। इसी समाज की धारणा पर प्रभाव डालने के लिए ही ईर्षा की जाती है, ऐश्वर्य्य, गुण वा मान का, गुप्त रूप से बिना किसी समुदाय को विदित कराए, सुख वा सन्तोष भोगने के लिए नहीं। ऐश्वर्य्य वा गुण में हम चाहे किसी व्यक्ति से वस्तुतः बढ़ कर वा उसके तुल्य न हों, पर यदि समाज की यह धारणा है कि हम उससे बढ़ कर वा उसके तुल्य हैं तो हम संतुष्ट रहेंगे, ईर्षा का घोर कष्ट न उठाने जाँयगे। कैसी अनोखी बात है कि वस्तु की प्राप्ति से वञ्चित रह कर भी हम समाज की धारणामात्र से सन्तुष्ट होते हैं! ईर्षा सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न एक विष है। इसके प्रभाव से हम दूसरे की बढ़ती से अपनी कोई वास्तविक हानि न देख कर भी व्यर्थ दुखी होते हैं। समाज के संघर्ष से जो अवास्तविकता उत्पन्न होती है वह हम पर प्रभाव डालने में वास्तविकता से कम नहीं। वह हमें सुखी भी कर सकती है, दुखी भी। फ़ारसी मसल है "मर्गे अंबोह जशने दारद"। हमकिसी कष्ट में हैं इसी बीच में कोई दूसरा व्यक्ति हम से अपना भी वही कष्ट वर्णन करने लगता है तो हमारे मुँह पर कुछ हँसी आ जाती है और हम कुछ आनंदित होकर कहते हैं "भाई! हम भी तो इसी बला में गिरफ़ार हैं"। यदि दस पाँच आदमी वही

कष्ट बतलानेवाले मिलें तो हमारी हँसी कुछ बढ़ भी जाती है। एक बार किसी ने अपने सम्बन्धी के मरने पर एक विद्वान् से पूछा कि "हम धैर्य्य कैसे धारण करें?" उसने कहा कि थोड़ी देर के लिए सोचो कि इसी संसार में लाखों अनाथ इधर उधर ठोकर खा रहे हैं, लाखों बच्चे बिना मा बाप के हो रहे हैं, लाखों विधवाएँ आँसू बहा रही हैं। यदि हमें कोई कष्ट है तो क्या दूसरों को भी उसी कष्ट में देख कर थोड़ी देर के लिए हमारा वह कष्ट वास्तव में कुछ घट जाता है? यदि नहीं घटता है तो यह हँसी कैसी, यह धैर्य्य कैसा? यह हँसी केवल स्थिति के मिलान पर निर्भर है, जिससे अपनी स्थिति के विशेषत्व का परिहार होता है। यह समाज-शक्ति का एक गुण है कि कभी कभी स्थिति के बने रहने पर भी उसके विशेषत्व के परिहार से तत्सम्बन्धी भावना में अंतर पड़ जाता है। पर यह अंतर ऐसा ही है जैसे रोते रोते सो जाना वा फोड़ा चिराते समय क्लोरोफ़ार्म सूँघ लेना।

समाज में पड़ते ही मनुष्य देखने लगता है कि उसकी स्थिति दोहरी हो गई है। वह देखता है कि "मैं यह हूँ" श्रोर "मैं यह समझा जाता हूँ"। इस दोहरेपन से उसका सुख भी दोहरा हो जाता है श्रोर दुःख भी। 'मैं बड़ा हूँ' इस निश्चय के साथ एक यह निश्चय श्रोर जुड़ जाने से कि 'मैं बड़ा समझा जाता हूँ' मनुष्य के आनन्द वा सुख के अनुभव में वृद्धि होती है। इसी प्रकार 'मैं क्षुद्र हूँ' इस धारणा के साथ 'मैं क्षुद्र समझा जाता हूँ' इस धारणा के योग से दुःख के अनुभव की वृद्धि होती है। इस प्रकार स्थिति के एकान्त श्रोर सामाजिक दो विभाग हो जाने से कोई तो दोनों विभागों पर दृष्टि रख सकते हैं श्रोर कोई एक ही पर। शक्ति श्रोर प्रतिभा सम्पन्न मनुष्य पहले यह प्रयत्न करते हैं कि 'हम ऐसे हों'। फिर वैसे हो जाने पर यदि आवश्यक हुआ तो यह प्रयत्न भी करते हैं कि 'हम ऐसे समझे जाँय'। इन दोनों के प्रयत्न जुदे जुदे हैं। संसार में शक्ति-सम्पन्न सब नहीं होते, इससे बहुत से लोग स्थिति के पहले विभाग के लिए जिन प्रयत्नों की आवश्यकता है उनमें अपने को असमर्थ देख दूसरे ही विभाग से किसी प्रकार अपना सन्तोष करना चाहते हैं श्रोर उसी पर दृष्टि रख कर प्रयत्न करते हैं। ईर्षा ऐसे लोगों के हृदय में बहुत जगह पाती है श्रोर उनके प्रयत्नों में सहायक भी होती है। भाव-परिवर्तन आदि के बल से जिस समुदाय के प्राणी परस्पर ऐसे सन गए हैं कि अपने इन्द्रियानुभव श्रोर भावनाश्रों तक को जवाब देकर दूसरों के इन्द्रियानुभव श्रोर भावनाश्रों द्वारा निर्वाह कर सकते हैं उसी में ईर्षा का विकाश हो सकता है। अतः ईर्षा का अनन्य अधिकार मनुष्य जाति ही पर है। एक कुत्ता किसी दूसरे कुत्ते को कुछ खाते देख उसे स्वयं खाने की इच्छा कर सकता है, पर वह यह नहीं चाह सकता कि चाहे हम खाँय या न खाँय वह दूसरा कुत्ता न खाने पावे। दूसरे कुत्तों की दृष्टि में हमारी स्थिति कैसी है, इसकी चिन्ता उस कुत्ते को न होगी।

अपने विषय में दूसरों के चित्त में अच्छी धारणा उत्पन्न करने का प्रयत्न अच्छी बात है। इस प्रयत्न को जो बुरा रूप प्राप्त होता है वह असत्य के समावेश के कारण—दूसरों की धारणा की अवास्तविकता श्रोर अपनी स्थिति की सापेक्षकता के कारण। जब हम अपने विषय में दूसरों की झूठी धारणा श्रोर अपनी स्थिति के सापेक्षिक रूप मात्र से सन्तोष करना चाहते हैं तभी बुराइयों के लिए जगह होती है श्रोर ईर्षा की राह खुलती है। जैसी स्थिति हमारी नहीं है, जैसी स्थिति प्राप्त करने की योग्यता हममें नहीं है, हम चाहते हैं कि लोग हमारी वैसी स्थिति समझें। जैसी स्थिति से वास्तव में हमें कोई सुख नहीं है वैसी स्थिति किसी दूसरे के समान वा दूसरे से अच्छी स्वयं समझने से नहीं बल्कि दूसरों के द्वारा समझी जाने से ही हम सन्तोष करते हैं! ऐसे असत्य आरोपों के बीच यदि ईर्षा ऐसी असार वृत्ति का उदय हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है?

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे शायद यह धारणा हो सकती है कि ईर्षा अप्राप्त वस्तु ही के

लिप होती है। पर यह बात नहीं है। हमारे पास जो वस्तु है उसे भी दूसरे के पास देख कर कभी कभी हमें बुरा लगता है, हम दुखी होते हैं। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि एक ऊँची जाति का आदमी किसी नीच जाति के आदमी को अपने ही समान वस्त्र आदि पहने देख बुरा मानता और कुढ़ता है। इसका कारण यह स्थायी बुद्धि वा अहंकार है कि 'हम ऊँचे हैं वह नीचा है, हम बड़े हैं वह छोटा है'। मर्य्यादावादी लोग शायद इसे श्रेणी के नियम का पालन कहेंगे। वे कहेंगे कि यदि कोई नीच है तो नीच की वर्दी में आवे, ग़रीब है तो ग़रीब की वर्दी में आवे। चाहे कोई कुछ कहे, पर इस प्रकार का भाव अहंकार ही है। समाज में यह भाव प्रकट करने के स्थान पर कि 'हम जो कार्य्य करते हैं वह उससे श्रेष्ठ है जो दूसरा करता है' यह भाव प्रकट करना अधिक कल्याण-कर और सन्तोष-विधायक है कि 'हम जो कार्य्य करते हैं वह उस कार्य्य से केवल भिन्न है जो दूसरा करता है।' न्यायाधीश न्याय करता है, कारीगर ईंटें जोड़ता है। न्यायाधीश ईंटें जोड़ना नहीं जानता, कारीगर न्याय करना नहीं जानता। समाज-कल्याण के विचार से न्यायाधीश का साधारण व्यवहार में कारीगर के प्रति यह प्रकट करना उचित नहीं कि 'हम तुमसे बड़े हैं, हमारा काम तुमसे श्रेष्ठ है'। जिस जाति में इस छोटाई बड़ाई का अभिमान जगह जगह जम कर दृढ़ हो जाता है उसके भिन्न भिन्न वर्गों के बीच स्थायी ईर्षा स्थापित हो जाती है और संयुक्त शक्ति का विकाश बहुत कम अवसरों पर देखा जाता है। यदि समाज में उन कार्यों की, जिनके द्वारा भिन्न भिन्न प्राणी जीवन-निर्वाह करते हैं, परस्पर छोटाई बड़ाई का ढिँढोरा न पीटा जाय, बल्कि उनकी विभिन्नता ही स्वीकार की जाय तो बहुत सा असन्तोष दूर हो जाय, राजनैतिक स्वत्व की आकांक्षा से स्त्रियों को पुरुषों की हद में न जाना पड़े, सब पढ़े लिखे आदमियों को सरकारी नौकरियों ही के पीछे न दौड़ना पड़े। जहाँ इस छोटाई बड़ाई का भाव बहुत प्रचार पा जाता है और जीवन-व्यवहारों में निर्दिष्ट और स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है वहाँ लोगों की शक्तियाँ केवल कुछ विशेष विशेष स्थानों की ओर प्रवृत्त होकर उन उन स्थानों पर इकट्ठी होने लगती हैं और समाज के कार्य्य-विभाग का क्रम खंडित हो जाता है अर्थात् कुछ विभाग सूने पड़ जाते हैं और कुछ आवश्यकता से अधिक भर जाते हैं जैसा कि आजकल इस देश में देखा जा रहा है। यहाँ कृषि, विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य आदि की ओर तब तक पढ़े लिखे लोग ध्यान न देंगे जब तक कुछ पेशों और नौकरियों की शान लोगों की नज़रों में समाई रहेगी। इस प्रकार की शान प्रायः किसी शक्ति के अनुचित प्रयोग में अधिक समझी जाती है। कोई पुलिस का कर्मचारी जब अपने पद का अभिमान प्रकट करता है तब यह नहीं कहता कि 'मैं जिस बदमाश को चाहूँ पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'। बल्कि यह कहता है कि 'मैं जिसको चाहूँ उसको पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'। अधिकार-सम्बन्धी अभिमान अनौचित्य की सामर्थ्य का अधिक होता है। यदि अधिकार के अनुचित उपयोग की सम्भावना दूर कर दी जाय तो स्थान स्थान पर अभिमान की जमी हुई मैल साफ़ हो जाय और समाज के कार्य्य-विभाग चमक जाँय। यदि समाज इस बात की पूरी चौकसी रक्खे कि पुलिस के अफ़सर उन्हीं लोगों को कष्ट दे सकें जो दोषी हैं, माल के अफ़सर उन्हीं लोगों को क्षतिग्रस्त कर सकें जो कुछ गड़बड़ करते हैं, तो उन्हें शेष लोगों पर जो निर्दोष हैं, जिनका मामला साफ़ है और जिनसे हर घड़ी काम पड़ता है, अभिमान प्रकट करने का अवसर कहाँ मिल सकता है? जब तक किसी कार्य्यालय में छोटे से बड़े तक सब अपना अपना नियमित कार्य्य ठीक ठीक करते हैं तब तक एक के लिये दूसरे पर अपनी बड़ाई प्रकट करने का अवसर नहीं आता है, पर जब कोई अपने कार्य्य में त्रुटि करता है तब उसका अफ़सर उसे दंड देकर अपनी बड़ाई वा अधिक सामर्थ्य दिखाता है। सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को क्षति-ग्रस्त

करने ग्रैार दूसरे के नम्र करने की सामर्थ्य का नाम है। अधिकार की सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को क्षति-ग्रस्त करने की सामर्थ्य है ग्रैार धन वा गुण की सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को नम्र करने की सामर्थ्य है। इससे विदित हुआ कि यह छोटाई बड़ाई हर समय तमाशा दिखाने के लिये नहीं है, बलिक अवसर पड़ने पर संशोधन वा शिक्षा के लिये है। किसी अवध के तअल्लुक़ेदार के लिये बड़ाई का यह स्वाँग दिखाना आवश्यक नहीं है कि वह जब मन में आवे तब कामदार टोपी सिर पर रख, हाथी पर चढ़ ग़रीबों को पिटवाता चले। किसी दिहाती थानेदार के लिये यह ज़रूरी नहीं है कि वह सिर पर लाल पगड़ी रख गँवारों को गाली देकर हर समय अपनी बड़ाई का अनुभव करता ग्रैार कराता रहे। अभिमान एक व्यक्तिगत गुण है, उसे समाज के भिन्न भिन्न व्यवसायों के साथ जोड़ना ठीक नहीं। समाज में स्थान स्थान पर अभिमान के अजायबघर स्थापित होना अच्छा नहीं। इस बात का ध्यान रखना समाज का कर्त्तव्य है कि धर्म ग्रैार राजबल से प्रतिष्ठित संस्थाओं के अंतर्गत अभिमानालय ग्रैार .ख़ुशामदख़ाने न खुलने पावें।

इसी प्रकार किसी बड़े धनी वा गुणी का यह हर घड़ी का एक काम न हो जाना चाहिए कि वह ग्रैारों के धन वा गुण से अपने धन वा गुण का मिलान किया करे ग्रैार अपनेसे कम धनी वा गुणी लोगों से अपनी श्रेष्ठता देख दिखाकर संतोष किया करे। इस प्रकार सन्तोष करना वस्तु को छोड़ छाया पर सन्तोष करना है। इस प्रकार के सन्तोष का सुख मनुष्य के लिये स्वाभाविक है पर वह ऐसे ही अवसरों तक के लिए निर्दिष्ट है, जब किसी त्रुटि का संशोधन हो, कठिनता का निराकरण हो वा आवश्यकता की पूर्त्ति हो। उसे ऐसे अवसरों के अतिरिक्त ग्रैार अवसरों में घसीटना बुराई है। कई आदमी किसी रास्ते के पत्थर को हटाने में लगे हैं ग्रैार वह नहीं हिलता है। एक दूसरा आदमी आकर अकेले उस पत्थर को हटा कर फेंक देता है। उस समय उसे अपने को बल में ग्रैारों से बढ़ कर देख संतोष ग्रैार आनन्द होगा ग्रैार शेष लोग भी उसके कृत्य से प्रभावित रहने के कारण उस समय उसके इस सापेक्षिक आनन्द वा आनन्द-प्रदर्शन से कुढ़ेंगे नहीं, बलिक कुतूहल-युक्त होंगे ग्रैार शायद कुछ शिक्षा भी ग्रहण करेंगे। पर यदि उसे इस बड़ाई के आनन्द का चसका लग जायगा ग्रैार वह हर घड़ी उसका अनुभव करना चाहेगा, उसे प्रकट किया करेगा तो यह एक प्रकार का दुर्व्यसन हो जायगा ग्रैार अहंकार के नाम से पुकारा जायगा। फिर उसके चित्त में अपने चारों ग्रोर अपनेसे घट कर धन, मान, गुण वा बल देखने की स्थायी इच्छा स्थापित हो जायगी ग्रैार जो वस्तु उसे प्राप्त है उसे भी दूसरों को प्राप्त करते देख उसे कुढ़न वा ईर्षा होगी। उसके अहंकार से आहत होकर दूसरे लोग भी उसकी उन्नति न देखना चाहेंगे ग्रैार उससे एक प्रकार की उचित ईर्षा रक्खेंगे। इस प्रकार ईर्षा की अच्छी खेती होगी। सारांश यह कि अभिमान हर घड़ी बड़ाई भोगने का दुर्व्यसन है ग्रैार ईर्षा उसकी सहगामिनी है। इस बड़ाई के अनुभव को भोगने का जिसे दुर्व्यसन हो जाता है उसके लिये उन्नति का द्वार बंद सा हो जाता है। उसे हर घड़ी अपनी बड़ाई अनुभव करते रहने का नशा हो जाता है, इससे उसकी सामग्री के लिये वह सदा अपनेसे घट कर लोगों की ग्रोर दृष्टि डाला करता है ग्रैार अपने से बड़े लोगों की ग्रोर नशा मिट्टी होने के भय से देखने का साहस नहीं करता। ऐसी अवस्था में वह उन्नति की उत्तेजना ग्रैार शिक्षा से वञ्चित रहता है। इसीसे अभिमान को 'मद' भी कहते हैं। दुर्व्यसन किसी प्रकार का हो, मद है।

यह तो कहा ही जा चुका है कि ईर्षा दूसरे की असम्पन्नता की इच्छा की अपूर्त्ति है। ऐसी इच्छा यदि किसी हानि के बदले में अथवा हानि की आशंका से हो तो वह शुद्ध ईर्षा नहीं है। किसी दूसरे से हानि उठा कर उसकी हानि की आकांक्षा करना केवल बुराई का बुराई से जवाब देना है ग्रैार क्रोध

वा वैर के अन्तर्गत है। इसी प्रकार यदि किसी की सम्पन्नता से हमें क्लेश वा हानि की आशंका है और हम उसकी ऐसी सम्पन्नता की अनिच्छा वा उसका दुःख करते हैं तो केवल अपना बचाव करते हैं—आजकल के शब्दों में अपनी रक्षा के स्वत्व का उपयोग करते हैं। यदि हम किसी अन्यायी को कोई अधिकार पाते देख कुढ़ते हैं तो केवल अपने वा समाज के बचाव की तैयारी करते हैं, ईर्षा नहीं करते। यदि हमें निश्चय है कि हमारा कोई मित्र इतना घमंडी है कि जो उसे किसी वस्तु की प्राप्ति होगी तो वह हमसे ऐंठ दिखा कर हमारा अपमान करेगा, तो हमारा यह चाहना कि वह मित्र वह वस्तु न पावे अथवा इस बात पर दुखी होना कि वह मित्र वह वस्तु पा गया, ईर्षा नहीं बचाव की चिन्ता है। इसीसे अभिमानियों से ईर्षा करने का अधिकार मनुष्य मात्र को है। लोग इस अधिकार का उपयोग भी ख़ूब करते हैं। क्या राजनीति में, क्या साहित्य में, क्या व्यवहार में, मानवजीवन के सब विभागों में इस अधिकार का उपयोग होते देखा जाता है। ऐसा देखा गया है कि अच्छे से अच्छे लेखकों के गुणों पर, उनके अभिमान से आहत लोगों के प्रयत्न वा उदासीनता से, बहुत दिनों तक परदा पड़ा रहा है और वे ज़िंदगी भर भवभूति के इस वाक्य पर संतोष किए बैठे रहे हैं—

"उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्म्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

अभिमान-ग्रस्त गुण को लोग देख कर भी नहीं देखते हैं। अभिमानी स्वयं अंधा हो कर दूसरों की आँखें भी फोड़ता है। न उसे दूसरों के उत्कृष्ट गुण की ओर ताकने का साहस होता है और न दूसरों को उसके गुण को स्वीकार करने की उत्कंठा होती है। अभिमान दोनों ओर ज्ञान का निषेध करता है। अतः जिस प्रकार अभिमान न करना श्रेष्ठ गुण है उसी प्रकार दूसरे के अभिमान को देख क्षुब्ध न होना भी श्रेष्ठ गुण है।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि ईर्षा दूसरे की किसी वस्तु की प्राप्ति वा प्राप्ति की सम्भावना से उत्पन्न दुःख है, चाहे वह वस्तु हमें प्राप्त हो वा न हो। अतः ईर्षा धारण करनेवालों के दो रूप होते हैं, एक असम्पन्न और दूसरा सम्पन्न। असम्पन्न रूप वह है जिसमें ईर्षा करनेवाला दूसरे को ऐसी वस्तु प्राप्त करते देख दुखी होता है जो उसके पास नहीं है। ऐसे दुःख में आलस्य वा असामर्थ्य से उत्पन्न प्राप्ति की निराशा, दूसरे की प्राप्ति से अपनी सापेक्षिक छोटाई का बोध, दूसरे की असम्पन्नता की इच्छा, और अंत में इस इच्छा की अपूर्त्ति के मूर्त्तिमान् कारण उस दूसरे व्यक्ति पर एक प्रकार का मीठा क्रोध, इतने भावों का मेल रहता है। किसी वस्तु को हम नहीं प्राप्त कर सकते। दूसरा उसी को प्राप्त करता है। हम समझते हैं कि लोगों की दृष्टि जब हमारी स्थिति पर पड़ती होगी तब उसकी स्थिति पर भी पड़ती होगी। इससे उनकी दृष्टि में हमारी स्थिति अवश्य कुछ न्यून जँचती होगी। अस्तु, स्थिति की समानता के लिए हम चाहते हैं कि वह दूसरा व्यक्ति उस वस्तु को न प्राप्त करता वा खो देता। पर वह दूसरा व्यक्ति जीता जागता प्रयत्नवान् प्राणी होने के कारण उसे प्राप्त करता वा रक्षित रखता है। इससे हमारी इच्छा-पूर्त्ति में बाधा होती है और हम बाधक के ऊपर मन ही मन चिड़चिड़ाते हैं। ईर्षा में क्रोध का भाव किस प्रकार मिला रहता है इसका प्रमाण बराबर मिलता रहता है। दूसरे व्यक्ति को किसी वस्तु से सम्पन्न देख यदि कोई उससे ईर्षा करता है तो केवल यही नहीं होता कि वह उसी वस्तु को उससे अलग करके वा अलग करने का प्रयत्न करके सन्तोष कर ले, बल्कि वह उस सम्पन्न व्यक्ति को अवसर पाने पर, बिना किसी अन्य कारण के, कुवाक्य भी कह बैठता है। जी दुखाने का यह प्रयत्न बिना किसी प्रकार के क्रोध के नहीं हो सकता। इसी कारण जैसे 'क्रोध से जलना' कहा जाता है वैसे ही 'ईर्षा से जलना' भी कहा जाता है। अब यहाँ पर लगे हाथों यह भी देख लेना चाहिए कि यह क्रोध है किस प्रकार का। यह क्रोध बिलकुल जड़ क्रोध है। जिसके प्रति ऐसा क्रोध किया जाता है उसके मानसिक उद्देश्य की ओर

नहीं ध्यान दिया जाता। यदि हम असावधानी से दौड़ते समय किसी सोए आदमी से टकरा कर उस पर बिगड़ने लगें, या रास्ते में पत्थर की ठोकर खा कर उसे चूर चूर करने पर उतारू हों तो हमारा यह क्रोध जड़ क्रोध होगा; क्यों कि हमने यह विचार नहीं किया कि क्या वह आदमी हमें ठोकर खिलाने के लिए ही सोया था, या वह पत्थर हमारे पैर में लगने के ही नामाक़ूल इरादे से वहाँ आ पड़ा था। यदि हमारे पास कोई वस्तु नहीं है और दूसरा उसे प्राप्त करता है तो वह इस उद्देश्य से नहीं प्राप्त करता कि उससे हम अपनी हेठी समझ कर दुखी हों और हमारी इच्छापूर्त्ति में बाधा पड़े। यह दूसरी बात है कि पीछे से यह मालूम करके भी कि उसकी प्राप्ति से हम अपनी हेठी समझ समझ कर बेचैन हो रहे हैं, वह हमारे दुःख में सहानुभूति न करे और उस वस्तु को लिए आनन्द से कान में तेल डाले बैठा रहे। प्रायः तो ऐसा होता है कि किसी वस्तु को प्राप्त करनेवाले मनुष्य को पहले यह ख़याल भी नहीं होता कि उसकी प्राप्ति से किन किन महाशयों की मानहानि हो रही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ईर्षा धारण करने वालों के दो रूप होते हैं, असम्पन्न और सम्पन्न। असम्पन्न रूप का दिग्दर्शन तो ऊपर हो चुका। सम्पन्न रूप वह है जिसमें जो वस्तु हमें प्राप्त है उसे दूसरे को भी प्राप्त करते देख हमें दुःख होता है। असम्पन्नता में दूसरे को अपने से बढ़ कर होते देख दुःख होता है, सम्पन्नता में दूसरे को अपने बराबर होते देख दुःख होता है। असम्पन्न रूप में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से घट कर न रहें, बराबर रहें और सम्पन्न रूप में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से बढ़ कर रहें, उसके बराबर न रहें। सम्पन्न ईर्षा में आकांक्षा बढ़ी चढ़ी होती है, इससे उसका अनौचित्य भी बढ़कर होता है। असम्पन्न ईर्षा वाला केवल अपने को नीचा समझे जाने से बचाने के लिए आकुल रहता है, पर सम्पन्न ईर्षावाला दूसरे को नीचा समझते रहने के लिए आकुल रहता है। असम्पन्न ईर्षा में निराशा का भाव और अपनी कमी का दुःख मिला रहता है, इससे उसकी कलुषता उतनी गहरी नहीं जान पड़ती। निराश और अभाव-पीड़ित मनुष्य जैसे इधर उधर भूलता भटकता फिरता है वैसे ही ईर्षा की राह में भी जा पड़ता है। पर सम्पन्न ईर्षालु की स्थिति ऐसी क्षोभ-कारिणी नहीं होती। हमारा कोई साथी है जो किसी वस्तु में हम से कम है। उसकी कमी और अपनी बड़ाई देख दिखा कर हर घड़ी प्रसन्न होने का हमें दुर्व्यसन हो गया है। इसी बीच उसको भी वह वस्तु प्राप्त हो जाती है और हमें जान पड़ता है कि हमारी स्थिति जो सापेक्षिक थी मारी गई। अपने आनन्द में इस प्रकार बाधा पड़ते देख हम अपने साथी की उस प्राप्ति से दुखी होते हैं और मन ही मन उस पर कुढ़ते भी हैं। साथी को बहुत दिनों तक तो इसका पता ही नहीं चलता, पीछे पता चलने पर भी वह हमारे इस दुःख में कुछ भी सहानुभूति नहीं करता। हमारी कुप्रवृत्ति का कारण बिना अवसर के हर घड़ी बड़ाई का अनुभव वा स्थिति की सापेक्षिकता का सुख भोगने की लत है। किसी स्थिति की वास्तविकता पर मुख्य और सापेक्षिकता पर गौण दृष्टि रखनी चाहिए। सापेक्षिकता नज़र का खेल है और कुछ नहीं। यदि हमें पेट भर अन्न नहीं मिलता है, पर लोग समझते हैं कि हम अपने किसी साथी से अच्छे वा धनी हैं तो लोगों की इस धारणा से हमारा पेट नहीं भर सकता। लोगों की इस धारणा से आनन्द होता है, पर वह उस आनंद का शतांश भी नहीं है जो वास्तविक स्थिति के अन्य प्रभावों से प्राप्त होता है। अतः स्थिति के और वास्तविक आनन्दों को छोड़ इस छाया-रूपी आनन्द पर मुख्य रूप से ध्यान रखना प्रमाद और स्थिति की रक्षा का बाधक है। यदि हम किसी वस्तु के वास्तविक रूपों की ओर ध्यान रख आवश्यक प्रयत्न न करते रहेंगे तो उसकी सँभाल नहीं कर सकते।

कभी कभी ऐसा होता है कि लोगों की धारणा का कुछ मूल्य होता है, अर्थात् उससे कोई वास्तविक

स्थिति प्राप्त होती है। जैसे, यदि किसी गाँव में मूर्ख ग्रैार विद्वान् दो वैद्य हैं तो लोग दूसरे को अधिक निपुण समझ उसके पास अधिक जाँयगे ग्रैार उसकी आमदनी अधिक होगी। अब यदि पहला वैद्य भी परिश्रम करके वैद्यक पढ़ लेगा ग्रैार लोगों की यह धारणा हो जायगी कि यह भी विद्वान् है तो उस दूसरे वैद्य की आमदनी कम हो जायगी। ऐसी अवस्था में उस दूसरे वैद्य का पहले वैद्य की उन्नति से कुढ़ना शुद्ध ईर्षा नहीं, हानि का दुःख वा झुँझलाहट है। ईर्षा निःस्वार्थ होनी चाहिए।

ईर्षा का दुःख प्रायः निष्फल ही जाता है। अधिकतर तो जिस बात की ईर्षा होती है वह ऐसी बात होती है जिस पर हमारा वश नहीं होता। जब हम में अपनी ही स्थिति में अनुकूल परिवर्त्तन करने की सामर्थ्य नहीं है तब हम दूसरे की स्थिति में कहाँ तक परिवर्त्तन कर सकते हैं। जितनी जानकारी हमें अपनी स्थिति से हो सकती है उतनी दूसरे की स्थिति से नहीं। किसी स्थिति में परिवर्त्तन करने के लिए उसके अंग प्रत्यंग का परिचय आवश्यक होता है। पर कभी कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं जिनमें ईर्षा की तुष्टि का साधन सुगम होता है। जैसे यदि किसी आदमी को किसी दूसरे से कुछ लाभ पहुँचने वाला होता है वा पहुँचता होता है तो हम उस दूसरे से उसकी कुछ बुराई कर आते हैं ग्रैार उसे उस लाभ से वञ्चित कर देते हैं। पर हमारी यह सफलता निरापद नहीं। यदि वञ्चित व्यक्ति को हमारी कार्रवाई का पता लग गया तो वह क्रुद्ध होकर हमारी हानि करने के लिए हमसे अधिक वेग के साथ यत्न करेगा। हमने तो केवल ज़रा सा जाकर ज़बान हिलाने का कष्ट उठाया था पर वह हमारी हानि करने के लिए पूरा परिश्रम करेगा। ईर्षा में प्रयत्नोत्पादिनी शक्ति बहुत कम होती है। उसमें वह वेग नहीं होता जो क्रोध आदि में होता है, क्योंकि आलस्य ग्रैार नैराश्य के आश्रय से तो उसकी उत्पत्ति ही होती है। जब आलस्य ग्रैार नैराश्य के कारण अपनी उन्नति के हेतु प्रयत्न करना तो दूर रहा, हम अपनी उन्नति का ध्यान तक अपने मन में नहीं ला सकते तभी हम हार कर दूसरे की स्थिति की ग्रोर बार बार देखते हैं ग्रैार सोचते हैं कि यदि उसकी स्थिति ऐसी न होती तो हमारी स्थिति जैसी है वैसी ही रहने पर भी बुरी न दिखाई देती। अपनी स्थिति को ज्यों की त्यों रख सापेक्षिकता द्वारा सन्तोष लाभ करने का ढीला यत्न आलस्य ग्रैार निराशा नहीं तो ग्रैार क्या है? जो वस्तु उज्वल नहीं है उसे मैली वस्तु के पास रख कर हम उसकी उज्वलता से कब तक ग्रैार कहाँ तक सन्तोष कर सकते हैं? जो अपनी उन्नति के प्रयत्न में बराबर लगा रहता है उसे न तो निराशा होती है ग्रैार न हर घड़ी दूसरे की स्थिति से अपनी स्थिति के मिलान करते रहने की फ़ुरसत। ईर्षा की सबसे अच्छी दवा है उद्योग ग्रैार आशा। जिस वस्तु के लिए उद्योग ग्रैार आशा निष्फल हो उस पर से अपना ध्यान हटा कर सृष्टि की अनन्तता से लाभ उठाना चाहिए।

जिससे ईर्षा की जाती है उस पर उस ईर्षा का क्या प्रभाव पड़ता है यह भी देख लेना चाहिए। ईर्षा अनावर्ती मनोवेग है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि किसी मनुष्य को अपने से ईर्षा करते देख हम भी उसके बदले में ईर्षा नहीं करने लगते। दूसरे को ईर्षा करते देख हम उससे घृणा करते हैं। दूसरे की ईर्षा का फल भोग हम उससे क्रोध करते हैं, जिसमें अधिक अनिष्ट-कारिणी शक्ति होती है। अतः ईर्षा एक ऐसी बुराई है जिसका बदला यदि मिलता है तो कुछ अधिक ही मिलता है। इससे इस बात का आभास मिलता है कि व्यवस्थापक सर्वात्मा के क़ानून में ईर्षा एक पाप वा जुर्म है। अपराधी ने अपने अपराध से जितना कष्ट दूसरे को पहुँचाया, अपराधी को भी केवल उतना ही कष्ट पहुँचाना सामाजिक न्याय नहीं है, अधिक कष्ट पहुँचाना न्याय है; क्योंकि निरपराध व्यक्ति की स्थिति को अपराधी की स्थिति से अच्छा दिखलाना न्याय का काम है।

ईर्षा अत्यन्त लज्जावती वृत्ति है। वह अपने धारणकर्त्ता स्वामी के सामने भी मुँह खोल कर

नहीं आती। उसके रूप आदि का पूरा परिचय न पाकर भी धारणकर्त्ता उसका हरम की बेगमों से अधिक परदा करता है। वह कभी प्रत्यक्ष रूप से समाज के सामने नहीं आती। उसका कोई बाहरी लक्षण धारणकर्त्ता पर नहीं दिखाई देता। क्रोध में आँखें लाल हों, भय में आकुलता हो, घृणा में नाक भी सिकुड़े, करुणा में आँसू आवे, पर ईर्षा में शायद ही कभी असावधानी से ठंडी साँस निकल जाय तो निकल जाय। ईर्षा इतनी कुत्सित वृत्ति है कि सभा समाज में, मित्रमंडली में, परिवार में, एकान्त कोठरी में, कहीं भी स्वीकार नहीं की जाती। लोग अपना क्रोध स्वीकार करते हैं, भय स्वीकार करते हैं, घृणा स्वीकार करते हैं, लोभ स्वीकार करते हैं, पर ईर्षा का नाम कभी मुँह पर नहीं लाते; ईर्षा से उत्पन्न अपने कार्य्यों को दूसरी मनोवृत्तियों के सिर मढ़ते हैं। यदि हमें ईर्षा के कारण किसी की प्रशंसा अच्छी नहीं लग रही है तो हम बड़ी गंभीरता और सज्जनता प्रकट करते हुए उसके दोषों और त्रुटियों का निदर्शन करते हैं। वैर ऐसी बुरी वृत्ति तक कभी कभी ईर्षा को छिपाने का काम दे जाती है।

—:o:—

जम्बू-राजवंश।

सन् ६६७ (विक्रमी सम्वत् ७२४) में राजा विक्रमपाल ने दिल्ली के महाराज राय तालूक पर चढ़ाई की थी। उस समय जम्बू के राजा कीर्त्तिधर ने एक बड़ी सेना साथ लेकर राय तालूक की सहायता की थी। युद्ध में राजा विक्रमपाल मारा गया और राय तालूक विजय प्राप्त करके १४४ राज्यों का सम्राट् बना। उसी समय से दिल्ली-पति और कीर्त्तिधर में बड़ी मित्रता हो गई और वे परस्पर एक दूसरे के सहायक बन गये। कीर्त्तिधर ने ६० वर्षों तक बड़ी उत्तमता से राज्य किया। उसके बाद क्रम से उसका पुत्र अजयधर, पौत्र विजयधर और प्रपौत्र वज्रधर जम्बू का राजा हुआ। इन तीनों ने सब मिला कर १६२ वर्ष तक राज्य किया था। वज्रधर के पुत्र सूर्य्यदेव ने राज्याधिकार पाकर न्याय, शासन आदि सात विभाग बनाये थे और प्रत्येक विभाग के लिए एक अलग मन्त्री नियत किया था। वह एक दिन में केवल एक विभाग का कार्य्य देखता था और इस प्रकार एक सप्ताह में सब विभागों की देखरेख हो जाया करती थी। उसके ७२ वर्ष तक राज्य करने के बाद उसका पुत्र भोजदेव राजा हुआ, जिसने ६६ वर्षों तक राज्य किया। भोजदेव के चार पुत्र थे, पर राज्य उनमें से सबसे बड़े करणदेव को मिला था। इसी प्रकार कई पीढ़ियों तक राज्य चलने के बाद राजा भोजदेव द्वितीय राजा हुआ। वह बहुत बुद्धिमान् और अच्छा राजनीतिज्ञ था। भारत के प्रायः सभी बड़े बड़े महाराजाओं से, विशेष कर पंजाब-पति महाराज जयपाल से उसकी बहुत मित्रता थी।

सन् ९७५ (संवत् १०३२) में ग़ज़नी के बादशाह नसीरुद्दीन सुबक्तगीन ने भारत पर चढ़ाई करने का विचार किया। इससे पूर्व उसने क़ाबुल के अनेक प्राचीन हिन्दू निवासियों को मरवा डाला था। महाराज जयपाल ने नसीरुद्दीन के मुक़ाबले के लिए राजपूतों की बहुत बड़ी सेना एकत्र की थी, जिसमें भोजदेव ने भी बहुत अधिक सहायता दी थी। अपने पुत्र अवतारदेव पर राजकार्य्य छोड़कर भोजदेव स्वयं युद्ध में गया था और वहीं वह मारा गया था। तब से अवतारदेव पर जयपाल और भी अधिक कृपा रखने लगा। नसीरुद्दीन की मृत्यु के बाद उसके पुत्र महमूद (ग़ज़नवी) ने सन् १००० (सं० १०५७) में भारत पर आक्रमण किया। उस समय भी जयपाल ने जम्बू-राज की सहायता से उसका मुक़ाबला किया; लेकिन उसमें उसे सफलता न हुई और उसका पुत्र इन्द्रपाल युद्ध से भाग कर पहाड़ों में जा छिपा। इसके बाद महमूद की ओर चढ़ाइयों के समय अवतारदेव ने मुसलमानों के ख़ूब दाँत खट्टे किये और एक युद्ध में महमूद के एक शाहज़ादे को भी घायल कर दिया। अवतारदेव

के ४४ वर्ष तक राज्य करने के बाद उसका पुत्र यशदेव राजा हुआ, जिसने जसरौटा नामक नगर बसाया और ३० वर्ष तक न्यायपूर्वक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र संग्रामदेव और फिर पौत्र जगदेव जम्बू का राजा हुआ। जगदेव के समय में महमूद के वंशज मलिक .खुसरो ने भारत का कुछ अंश जीत लिया और उसके बाद सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी की कई चढ़ाइयाँ हुई। इसी जगदेव की सहमति से सुलतान ग़ोरी ने स्यालकोट का क़िला बनवाया था। इसीके बाद .ग़ोरी ने पृथ्वीराज को युद्ध में परास्त करके उन्हें .क़ैद कर लिया था और उनकी आँखें निकलवा ली थीं।

सन् १३९२ में तैमूरलंग ने भारत पर चढ़ाई की, दिल्ली को अपने अधीन कर लिया और वहाँ बहुत से लोगों को मरवा डाला। वहाँ से तुर्किस्तान लौटते समय उसने हरद्वार में कई हज़ार यात्रियों का भी वध करा डाला था। वहाँ से कुछ दूर आगे बढ़ने पर पहाड़ों में उसे बहुत बड़ी सेना के साथ जम्बू का राजा मालदेव मिला और उसने मुसलमानी सेना को मार भगाया। ४० वर्ष तक राज्य करने के बाद सन् १३९९ (सं० १४५६) में मालदेव का देहान्त हो गया। उसकी तीसरी पीढ़ी में राजा ब्रह्मदेव हुआ, जिसके राजत्वकाल (सन् १५२५) में जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने भारत पर अधिकार करने की इच्छा से इस देश में प्रवेश किया। बहलोलपुर और स्यालकोट होता हुआ वह पानीपत पहुँचा और वहाँ उसने सुलतान इब्राहीम शाहसूर को परास्त किया था। उसी समय सिक्ख-धर्म्म के प्रवर्तक गुरु नानक का जन्म हुआ था।

इसके बाद दो ढाई शताब्दियों तक जम्बू के राजवंशियों की कोई उल्लेख-योग्य बात नहीं हुई। सन् १७८२ (सं० १८३९) में जम्बू में राजा भोजराज देव का राज्य आरम्भ हुआ। भोजराज देव का एक सम्बन्धी दलसिंह था, जिससे उनकी बहुत शत्रुता थी। एक दिन उसने अपने एक सरदार मियाँ साहब .ज़ोरावरसिंह से कहा कि यदि वह किसी प्रकार दलसिंह के प्राण ले सके तो उसे एक जागीर दी जायगी। पर .ज़ोरावरसिंह इस पर राज़ी नहीं हुए। लेकिन .ज़ोरावरसिंह के छोटे भाई मियाँ मोटे ने यह बात स्वीकार करली और कुछ सिपाहियों को साथ ले जाकर दलसिंह और उसके साथियों को मार डाला। उस समय दलसिंह के सम्बन्धियों में से केवल अजीतसिंह नामक उनका एक बहुत छोटा पुत्र बच रहा था। महाराज रणजीतसिंह के पिता महान्‌सिंह से भोजराज देव की बड़ी मित्रता थी, पर अपने राज्यारोहण के पाँच वर्ष बाद उन दोनों में शत्रुता हो गई। एक बार भोजराजदेव जब बहुत बीमार पड़ा तो महान्‌सिंह ने अवसर पाकर अपनी सेना सहित उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी और जम्बू लूट लिया। महान्‌सिंह के चले जाने पर भोजराज देव फिर पूर्ववत् शासन करने लगा और अन्त में जंगी मिसल के सरदारों के झगड़े में मारा गया और उसकी रानी उसके मृत-शरीर के साथ जम्बू में सती हो गई। उस समय उसका पुत्र और राज्य का अधिकारी सुवर्णदेव केवल एक वर्ष का था, इसलिए राज्य का कुल कारबार मियाँ मोटा करता था। बालक सुवर्णदेव ग्यारह वर्ष का होकर मर गया और भोजराजदेव के वंश का अन्त हो गया। उस समय राज्याधिकार दलसिंह के पुत्र राजा अजीतसिंह को दिया गया।

कुछ ही दिनों बाद अजीतसिंह, रानी बुन्दराल और मियाँ मोटा में कुछ खटपट हो गई और मियाँ मोटा वहाँ से नाराज़ होकर पुरमण्डल नामक स्थान पर चला गया। उसी समय से .ज़ोरावरसिंह भी अपनी जागीर में रहने लगा। अजीतसिंह में शासन करने की योग्यता बिलकुल न थी, इसलिए रानी बुन्दराल ने धीरे धीरे कुल राज्याधिकार अपने हाथ में ले लिये। उस समय महाराजा रणजीतसिंह का प्रतिनिधि भाई हुकुमसिंह जम्बू के आस पास के ताल्लुक़ों का अधिकारी था। उसने एक बार रणजीतसिंह की आज्ञा से जम्बू पर चढ़ाई की, पर उसे मार्ग में ही मियाँ मोटा ने कुछ राजपूतों को साथ

लेकर रोक लिया और लड़कर मार भगाया। इस युद्ध में ज़ोरावरसिंह के प्रपौत्र गुलाबसिंह ने अपने दादा की इच्छा के विरुद्ध मियाँ मोटा का साथ दिया और अच्छी वीरता दिखलाई। यही गुलाब सिंह आगे चल कर जम्बू और काश्मीर के राजा हुए। उक्त युद्ध सन् १८०८ में हुआ था और उस समय गुलाबसिंह की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। गुलाबसिंह अपने जीवन में प्रायः इस बात का ज़िक्र किया करते थे कि उन्हें शत्रुओं के सिर पर वार करने के लिए उचकना पड़ता था। एक दिन गुलाबसिंह अपने दादा के एक घोड़े पर सवार होकर जंगलों में निकल गये। वहाँ उस घोड़े को कुछ चोट आ गई। जब ज़ोरावरसिंह को यह बात मालूम हुई तो वह गुलाबसिंह पर बहुत बिगड़े। इसलिए गुलाबसिंह नाराज़ होकर घर से कुछ लोगों के साथ पेशावर की ओर भाग गये। उनकी इच्छा क़ाबुल तक जाने की थी, क्योंकि उन्होंने सुना था कि वहाँ शाह शुजा फ़ौज भरती कर रहा है। लेकिन सिन्ध नदी के किनारे पहुँचने पर उनके हिन्दू साथियों ने पेशावर जाने से इनकार कर दिया, क्योंकि उन्हें मियाँ मोटे की नाराज़गी का भय था। इसलिए वहाँ से लौट कर वह सुखू परगने में दीवान .खुशवक्त.राय के पास पहुँचे। सुखू परगना सरदार निहालसिंह अटारीवाले की जागीर थी और उसका प्रबन्ध उक्त दीवान के हाथ में था। दीवान ने गुलाबसिंह का बहुत आदर सत्कार किया, क्योंकि उसी अवसर पर ज़ोरावरसिंह के यहाँ के एक पुराने जमादार ने, जो उस समय वहाँ उपस्थित था, उनका परिचय करा दिया था। उन्हीं दिनों दीवान के अधीनस्थ एक ज़मींदार ने सिर उठाया था और सांग के क़िले के निकट दीवान के कुछ सिपाहियों को परास्त किया था। इस पर गुलाबसिंह ने अपने साथ थोड़ी सी सेना ले जाकर उस ज़मींदार को परास्त कर दिया। इसी बीच में गुलाबसिंह की वीरता और रण-कुशलता का समाचार महाराज रणजीतसिंह तक पहुँचा और उन्होंने मियाँ मोटा को आज्ञा लिख भेजी कि गुलाबसिंह को भेज दो। जब यह समाचार दीवान .खुशवक्त़राय को मिला तो उन्होंने गुलाबसिंह को एक उत्तम घोड़ा देकर आदरपूर्वक विदा किया। जब गुलाबसिंह जम्बू पहुँचे तो मियाँ मोटा उन्हें लेकर स्यालकोट से दस कोस दक्षिण उसका नामक स्थान पर पहुँचे जहाँ महाराज रणजीतसिंह की छावनी थी। यह घटना सन् १८१० की है।

गुलाबसिंह दो वर्षों तक वहाँ योंही रहे। इसके बाद राजा ध्यानसिंह ने उन्हें तथा उनके पिता मियाँ साहब केसरसिंह को अच्छे वेतन पर सेना में भरती कर लिया।

फ़तहख़ाँ बासकजाई ने सन् १८१३ में महाराज रणजीतसिंह को इस शर्त पर आठ लाख रुपए वार्षिक देना स्वीकार किया था कि महाराज साहब उसे काश्मीर को अपने अधीन करने में सेना द्वारा सहायता देंगे। महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली और तदनुसार दीवान मोहकमचन्द को बहुत बड़ी सेना के साथ उसकी सहायता के लिए भेजा। उस समय अफ़गान साम्राज्य की ओर से अतामुहम्मद काश्मीर का शासन करता था। दीवान मोहकमचन्द ने अतामुहम्मद को परास्त करके फ़तहख़ाँ से अपना रुपया माँगा। पहले तो फ़तहख़ाँ ने रुपया देने में आनाकानी की, पर बाद में वह रुपये देकर और अपने भाई मुहम्मद अज़ीम को काश्मीर का शासक बनाकर क़ाबुल चला गया। मार्ग में उसने अटक के क़िले पर भी अधिकार करना चाहा; पर ज्योंही दीवान मोहकमचन्द को उसका यह विचार मालूम हुआ, त्योंही उन्होंने उस पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में गुलाबसिंह ने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया था, लेकिन उनके पिता केसरसिंह बहुत ज़ख़्मी हो गये थे। फ़तहख़ाँ को भगा कर जब सिक्ख सेना लौटने लगी तो मार्ग में गुलाबसिंह को पता लगा कि रानी बुन्दराल ने दो दुष्टों के द्वारा मियाँ मोटासिंह को मरवा डाला।

जब मुहम्मद अज़ीम का शासन काश्मीर में भली भाँति जम गया तो उसने सिक्खों को कर देना बन्द कर दिया। इसलिए सिक्ख-सेना फिर उस पर आक्रमण करने के लिए सन् १८१६ में काश्मीर की ओर रवाना हुई। जब सिक्खसेना दीवान रामदयाल और दलसिंह की अधीनता में पीरपंजल पार करके काश्मीर की सीमा में पहुँच गई तो रजावरी के शासक राजा आजखाँ ने विश्वासघात करके सिक्ख सेना का पक्ष छोड़ दिया और उसे रसद आदि देना बन्द कर दिया। यही नहीं, बल्कि उसने और भी दुष्टता यह की कि महाराज रणजीतसिंह को कई समाचार इस आशय के भेजे कि उनकी सेना पीर-पंजल में नष्ट हो गई। गुलाबसिंह उस समय मण्डी में थे। उन्होंने इन समाचारों पर विश्वास कर लिया और उलटे बशाहिर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में ही उनकी सेना ने बड़ी कायरता दिखलाई और इधर उधर भागने लगी। उसी अवसर पर आसपास के ज़मीदारों ने भी सिर उठाया और उन्हें दिक़ करना चाहा; पर गुलाबसिंह ने लड़ भिड़ कर उन सबको परास्त कर दिया। गुलाबसिंह के लाहौर पहुँचने पर उन्हें पुरस्कार-स्वरूप एक जागीर मिली और उनका बहुत आदर हुआ।

इसके बाद महाराज रणजीतसिंह गढ़दनाले का क़िला फ़तह करने के लिए जालन्धर दोआब की तरफ़ गये। इधर कुछ दिनों से गुलाबसिंह जम्बू में ख़ाली बैठे हुए थे, इसलिए यह सुअवसर देख वह ठीक समय पर महाराज की सहायता के लिए उनके पास आ पहुँचे। उस युद्ध में गुलाबसिंह ने जो वीरता दिखलाई थी उसके उपलक्ष में उन्हें महाराज ने रामगढ़ की जागीर दे दी। महाराज रणजीतसिंह अपने सहायकों का उत्साह बढ़ाने के लिए प्रायः इस प्रकार जागीरें दे दिया करते थे। उसी वर्ष महाराज ने नवाब मुज़फ्फ़रख़ाँ को अधीन करने के लिए मुलतान पर चढ़ाई की। इस युद्ध में एक बार एक बड़ा सरदार मारा गया और महाराज ने उसकी लाश मँगवाने की आज्ञा दी। जिस स्थान पर वह लाश गिरी थी वहाँ चारों ओर से गोलियाँ बरस रही थीं। इसलिए किसी को वहाँ जाकर उस मृत सरदार का शव लाने का साहस न हो सका। गुलाबसिंह सबसे आगे झपट कर बढ़े और सबके देखते देखते वह लाश उठा लाये। नवाब के अधीन होने और नज़राना दे चुकने के बाद महाराज लाहौर लौट गये और गुलाबसिंह जम्बू चले गये।

सन् १८१७ में गुलाबसिंह को महाराज की ओर से रिआसी की जागीर मिली। इनसे पहले यह जागीर दीवानसिंह के पास थी, जो मियाँ मोटासिंह के हत्याकारियों में सम्मिलित था। रिआसी के क़िले पर अधिकार करके गुलाबसिंह ने दीवान अमीरचन्द की सम्मति से उसकी मरम्मत कराई और वहाँ थोड़े से सिपाही छोड़कर वह महाराज से मिलने लाहौर गये। पर वहाँ से उन्हें शीघ्र ही लौट आना पड़ा, क्योंकि उस क़िले पर एक दूसरे जागीरदार भूपदेव के आदमी अधिकार करने की चेष्टा करने लगे थे। लौट कर गुलाबसिंह ने इन उपद्रवियों को परास्त किया और उनके सरदार सरतापा को क्रोध में आकर अपने हाथ से टुकड़े टुकड़े कर डाला और इसी प्रकार उसके अन्य साथियों को भी मरवा कर उनकी लाशें पेड़ों पर लटकवा दीं। उधर भूपदेव और दीदू अपने सिपाहियों सहित मियाँ मोटासिंह की जागीर में जाकर लूट मार करने लगे। इसलिए गुलाबसिंह ने रिआसी को ज़ोरावरसिंह के सपुर्द करके उस ओर प्रस्थान किया और कई लड़ाइयों के बाद मियाँ दीदू को पहाड़ों में मार भगाया।

काश्मीर की हिन्दू प्रजा पर अफ़ग़ानसरकार के कर्म्मचारी बहुत अधिक अत्याचार करते थे, इसलिए महाराज रणजीतसिंह ने उस प्रान्त को अपने अधीन करना चाहा। उसी अवसर पर संयोगवश (सन् १८१९ में) पण्डित बीरबल तथा और कई आदमी काश्मीर से भाग कर लाहौर पहुँचे और महाराज से काश्मीर अपने अधीन कर लेने की प्रार्थना करने लगे। महाराज ने भी तदनुसार युद्ध आरम्भ कर दिया। उस युद्ध में गुलाबसिंह ने

जब्बारख़ाँ का मुक़ाबला करके उसे परास्त किया था। काश्मीर जीत कर महाराज ने दीवान मोतीराम को वहाँ का शासक (गवर्नर) बनाया और गुलाबसिंह को जम्बू-प्रान्त दे दिया। गुलाबसिंह को सिक्ख-सरकार के लिए सेना रखने के अतिरिक्त और किसी प्रकार का कर न देना पड़ता था।

काश्मीर और पेशावर से लौट कर महाराज ने डेरा ग़ाज़ीख़ाँ पर चढ़ाई की, जिसमें गुलाबसिंह भी अपनी सेना सहित सम्मिलित थे। उसी अवसर पर गुलाबसिंह के दादा ज़ोरावरसिंह का देहान्त हो गया और केसरसिंह छुट्टी लेकर जम्बू चले गये। इसके बाद पेशावर के यूसुफ़ज़इयों को दमन करने में भी गुलाबसिंह ने महाराज को बहुत सहायता दी थी।

यद्यपि जम्बू सिक्ख-साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया गया था और वहाँ के प्रबन्ध के लिए उक्त सरकार की ओर से दो सरदार नियुक्त थे तो भी मियाँ दीदू उसके आस पास के गाँवों में लूट मार करता फिरता था। इसके सिवा बहुत से राजपूत और ज़मींदार भी उसके सहायक हो गये थे। सिक्खसरदार कभी कभी इन उपद्रवियों के सरदारों को पकड़ लिया करते थे और उन्हें क़ैद या देश-निकाले की सज़ा देते थे। लेकिन मियाँ दीदू के उपद्रव दिन पर दिन बढ़ते जाते थे। एक बार जम्बू से कुछ फल महाराज के लिए आ रहे थे। मियाँ दीदू ने मार्ग में ही वे सब फल लूट लिये और उनके बदले टोकरों आदि में गोबर और कीचड़ भर दिया। जब यह समाचार लाहौर में महाराज तक पहुँचा तो वह बहुत क्रुद्ध हुए। उसी समय उन्होंने मियाँ दीदू को दण्ड देने का विचार किया। उस अवसर पर गुलाबसिंह ने महाराज को उस शेर का क़िस्सा सुनाया, जिसकी मोछें सोने के समय एक चूहा काट जाया करता था और जिसने विवश हो कर उस चूहे के लिए एक बिल्ली पाली थी। इसका अभिप्राय यह था कि पंजाब-केसरी एक बहुत छोटे शत्रु के लिए स्वयं कोई कष्ट न करें और उसका भार गुलाबसिंह पर सौंप दें। महाराज को भी यह बात पसन्द आ गई और उन्होंने गुलाबसिंह को अपना दोशाला ओढ़ाकर कई सरदारों के साथ जम्बू की ओर भेजा। गुलाबसिंह ने मियाँ दीदू के उन साथियों को छुड़वा दिया जो क़ैद किये जा चुके थे और इस प्रकार और लोगों की सहानुभूति प्राप्त की। मियाँ दीदू ने भागने की चेष्टा की, पर वह सिक्ख-सिपाहियों द्वारा मारा गया। गुलाबसिंह उसके दो लड़कों को पकड़ कर लाहौर ले गये। एक बार शिकार में जब गुलाबसिंह एक निराले जंगल में पहुँचे तो वहाँ उन्होंने दीदू के एक पुत्र वसन्तसिंह से कहा कि मैं तुम्हारे पिता की हत्या करने वाला हूँ, इसलिए तुम इस समय मुझसे अपने पिता का बदला ले सकते हो। वसन्तसिंह ने बहुत नम्र होकर उत्तर दिया कि मैं आपके अनुग्रह और कृपापूर्ण व्यवहारों से बहुत दब गया हूँ।

(शेष आगे)

—:o:—

सूचना और सम्मति।

बंबई विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक व्यापार-कालिज खुला है, जिसमें व्यापार की शिक्षा दी जायगी। अभी जब तक अलग भवन न बन जायगा यह कालिज एलफिंस्टन कालिज ही में रहेगा। शिक्षा का समय सबेरे ८ से १० बजे तक और सन्ध्या को ५ से ७ बजे तक रक्खा गया है। इससे निकले हुए छात्रों को बंबई यूनिवर्सिटी की बी० सी० (Bachelor of Commerce) की उपाधि मिलेगी। इस कालिज की स्थापना के लिए जो उद्योग मि० के० सुब्रह्मण्य ऐयर ने किया उसके लिए बंबई के श्रीमान् गवर्नर महोदय ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। अभी मि० सुब्रह्मण्य ऐयर ही इस कालिज के प्रधान प्रिंसिपल नियुक्त हुए हैं। शेष अध्यापकों के नाम ये हैं—

१ श्रीनीलकंठ सदाशिव तकाखे एम० ए०–
अँगरेज़ी के अध्यापक।
२ श्रीरामचन्द्र महादेव जोशी एम० ए०; एल
एल० बी–अर्थशास्त्र के अध्यापक।
३ श्रीभास्करराव विट्ठलदास मेहता एम० ए०;
एल एल० बी०–व्यापारक़ानून के अध्यापक।
४ मि० सोराबजी शाकूर जी (इंजिनियर)–हिसाब
किताब के अध्यापक।

—:o:—

इस सभा की रिपोर्ट देखने से पाठकों को मालूम ही होगा कि विज्ञान के प्रचार के लिये प्रयाग में एक विज्ञानपरिषद् स्थापित हुई है जो हिन्दी और उर्दू में विज्ञान-विषय की पुस्तकें बनवाएगी और व्याख्यान आदि का भी प्रवन्ध करेगी। परिषद् क्या कर रही है, इसका पता वह अपनी छपी अपील में इस प्रकार देती है—

"परिषद् ने......पहले पहल प्रारम्भिक पुस्तकों की रचना का काम अपने हाथ में लिया है। उसके कई सदस्य रसायन, भैातिक तथा जीव-विज्ञान पर छोटी पुस्तकें लिख रहे हैं और इस कार्य्य में योग देने के लिए कई कालिजों के उन विद्वान् अध्यापकों ने, जो हमारी प्रान्तीय (?) भाषा में ग्रन्थ लिख सकते हैं, सूचना दी है। परिषद् की कार्य्य-कारिणी समिति के विषयानुसार छ विभाग किये गए हैं जिनमें ग्रन्थ-रचना कार्य्य के अतिरिक्त वैज्ञानिक परिभाषा पर भी विचार होता है और शीघ्र ही परिभाषा का प्रकाशन भी सामयिकपत्रों में प्रारम्भ हो जायगा। अभी अर्थाभाव के कारण व्याख्यानादि का प्रवन्ध नहीं हुआ है किन्तु पत्रों में निवन्ध भेजना सदस्यों ने प्रारम्भ कर दिया है"।

हिन्दीप्रेमियों को चाहिए कि वे इस परिषद् की धन से पूरी सहायता करें, और नहीं तो कम से कम २) वार्षिक चंदा देकर इसके सदस्य अवश्य हो जायँ। पत्र-व्यवहार आदि इस पते से करना चाहिए—अध्यापक श्रीरामदास गैाड़ एम० ए०, उपमंत्री विज्ञान-परिषद्; म्योर कालेज, इलाहाबाद।

—:o:—

फ़ैज़ाबाद में गत प्रान्तीय कान् फ़्रेंसों के अवसर पर देशी भाषाओं, विशेष कर हिन्दी के सम्बन्ध, में जो भाव प्रकट किये गए वे अत्यन्त निन्दनीय और अभिमान-सूचक थे। बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त ने जो हिन्दी-भाषा के अधिक व्यवहार पर ज़ोर दिया वह इस लिए जिसमें ये कान्फ़्रेंसें अभिनय मात्र न हों, जिन्हें अधिकांश लोग केवल दूर से देखें। खेद के साथ कहना पड़ता है कि बाबू शिवप्रसाद के विरोध के लिए ऐसे लोग खड़े हुए जिन्होंने अभी तक कोई सार्वजनिक कार्य्य नहीं किया है, और जो इधर थोड़े ही दिनों से अपना फ़ुरसत का वक़् अपने को 'पबलिक मेन' प्रकट करने में लगाने लगे हैं। ऐसे लोगों को समझना चाहिए कि केवल देशी भाषाओं का विरोध करने से ही 'भारत-प्रसिद्ध' होने की योग्यता नहीं प्रमाणित होती। यदि कान् फ़्रेंसें प्रान्तीय न होतीं, भारतीय होतीं, तो इस प्रकार का विरोध किसी अंश में उचित भी था।

—:o:—

हाल में ब्रिटिश असोसिएशन के सामने डाक्टर मेकडैानल ने 'हास्य' पर एक लेख पढ़ा था। उन्होंने कहा कि अब तक हास्य के जितने हेतु-निरूपण हुए हैं उनमें एक भी ठीक नहीं प्रमाणित हुआ। स्पेंसर ने हास्य का कारण यह बतलाया था कि शरीर की फ़ालतू शक्ति उन प्रेरक नाड़ियों के द्वारा निकलती है जिनका व्यवहार बहुत अधिक होता है जैसे श्वासवाहिनी तथा मुँह को खोलने और बंद करने वाली नाड़ियाँ। पर बहुत सी अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमें मस्तिष्क से किसी फ़ालतू शक्ति का वहिष्कार नहीं होता। जैसे किसी आदमी को अपनी टोपी पर बैठा देख देखनेवालों को हँसी छूटती है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जब जब ऐसे दृश्य दिखाई पड़ते हैं तब तब शरीर में फ़ालतू शक्ति रहती है। हँसी वास्तव में एक साथ मिली जुली कई प्रकार की गतियों का प्रवाह है। यह प्रवाह एक ऐसी प्रेरणा के द्वारा होता है जिस पर कभी कभी इच्छा का वश बिलकुल नहीं रहता। इस

प्रकार की क्रिया से यह लक्षित होता है कि मनुष्य की रचना में एक प्रकार की भौतिक और मानसिक संयुक्त प्रवृत्ति होती है जिसका केन्द्र मस्तिष्क में होता है। मनुष्य जाति में जो इस क्रिया का स्थापन हुआ है उससे उपकार ही है।

हास्य दो प्रकार के होते हैं, एक वह जो किसी विलक्षण वस्तु वा व्यापार के देखने से होता है, दूसरा वह जिसे किसी वस्तु वा व्यापार की अपेक्षा नहीं होती। हँसी मानसिक क्रियाओं को एक दम रोक देती है और इस प्रकार बेढंगी वस्तु पर अधिक विचार करने से रोकती है। हँसी के द्वारा शरीर में गति उत्पन्न होती है, जिससे रक्त और श्वास का प्रवाह तेज़ हो जाता है और शरीर का स्वास्थ्य-साधन होता है। हँसी मनुष्य ऐसे प्राणी के लिए आवश्यक है। हँसी का आदि उद्देश्य सहानुभूति वा करुणा पर एक प्रकार की रोक रखना है। यद्यपि यह परम आवश्यक है कि हम अपने सहवर्गियों के दुःख से दुखी हों, पर यदि हम सब प्रकार के छोटे छोटे दुःखों और मूर्खताओं के लिए, जिन्हें अपने चारों ओर हम हर समय पाते रहते हैं, व्यथित होने लगें तो हमारा जीवन ही दुःखमय हो जाय।

—:o:—

सभा का बीसवाँ वार्षिकोत्सव।

गत १ अक्तूबर सन् १९१३ बुधवार को सन्ध्या समय ५॥ बजे सभाभवन में काशी-नागरीप्रचारिणी सभा का बीसवाँ वार्षिकोत्सव बड़े समारोह से हुआ था। सभाभवन पताकाओं आदि से सजाया गया था। उत्सव में उपस्थित सज्जनों की संख्या ढाई तीन सौ के लगभग थी, जिसमें नगर के सभी पढ़े लिखे, रईस और प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित थे। सारा हाल दर्शकों से भरा हुआ था। सभापति का आसन बनारस के कमिश्नर मिस्टर ई० ए० मलोनी आई० सी० एस० ने सुशोभित किया था।

ठीक साढ़े पाँच बजे कमिश्नर साहब सभा-भवन में पधारे। द्वार पर श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दर-दास बी० ए०, बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी० आदि सज्जनों ने उनका स्वागत किया। सबसे पहले कमिश्नर साहब ने सभा के कार्य्यालय, पुस्तकालय, तथा कोश-विभाग का भलीभाँति निरीक्षण किया। पुस्तकालय में आपने प्रायः सभी समाचारपत्रों को एक एक करके देखा और अपरिचित भाषाओं के पत्रों और पत्रिकाओं के नाम तथा उद्देश आदि पूछे। कोश का पूरा कार्य्य-क्रम आपको भली भाँति समझाया गया। सब बातों को आप बड़े ध्यान से सुनते थे तथा बीच बीच में स्वयं भी प्रश्न करते जाते थे। कोश-विभाग का निरीक्षण करके आप हाल में आये जहाँ आप को सभापति के आसन पर बैठाकर करतल-ध्वनि की गई। इसके बाद सभा के मन्त्री बा० गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी० ने सभा के बीसवें वर्ष का विवरण संक्षेप रूप में पढ़ सुनाया। उसी अवसर पर उस विवरण की छपी हुई प्रतियाँ भी उपस्थित सज्जनों में बाँट दी गईं। इसके बाद कमिश्नर साहब ने पं० रामचन्द्र शुक्ल को राधाकृष्णदास की जीवनी के लिये मेडल तथा पं० श्रीलाल उपाध्याय के लिये डा० छन्नूलाल मेमोरियल मेडल और लाला संतराम गोहल के लिये राधाकृष्ण-दास मेडल दिया। बा० गौरीशंकरप्रसाद के रिपोर्ट पढ़ चुकने और मेडल बँट जाने के बाद बा० श्याम-सुन्दरदास का व्याख्यान आरम्भ हुआ। यह व्याख्यान बड़ा ही रोचक और प्रभावशाली था। बीच बीच में लोग करतल-ध्वनि करते और कहीं कहीं ख़ूब हँसते थे।

बा० श्यामसुन्दरदास जी ने अपने व्याख्यान के आरम्भ में सभा के आरम्भ से लेकर आज तक, २० वर्षों का संक्षिप्त इतिहास कह सुनाया। आपने कहा—"इस सभा में सभी तरह के पढ़े लिखे और प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित हैं। बड़े बड़े राजा महा-राजा इसके संरक्षक हैं और सदा सब प्रकार से इसकी सहायता किया करते हैं। इस सभा का

उद्देश्य अन्य भाषाओं का विरोध करना नहीं है। आरम्भ में जिस समय यह सभा स्थापित हुई थी उस समय इस बात का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि हिन्दी को उर्दू के विरोध का भी अवसर मिलेगा। जिस प्रकार और सब भाषाएँ उन्नति कर रही हैं, उसी प्रकार हिन्दी को भी उन्नत करना ही इस सभा का मुख्य उद्देश्य है। आजतक इस सभा ने चन्दे आदि से संग्रह करके हिन्दी की उन्नति और प्रचार में १४००००) (एक लाख चालीस हज़ार रुपये) व्यय किये हैं। इस समय सभा की वार्षिक आय प्रायः सात आठ हज़ार रुपये है। इन बीस वर्षों में सभा ने अनेक बड़े बड़े काम किये हैं। इस बीच में सभा ने कोई ४००० नई हिन्दी-पुस्तकों की खोज की है जिसकी रिपोर्ट के आधार पर पं० श्यामबिहारी-मिश्र ने हिन्दी का एक बड़ा इतिहास लिखा है। खोज में हिन्दी-गद्य की अनेक ऐसी पुस्तकें मिली हैं जो १३ वीं शताब्दी की बनी हुई हैं। इसके सिवा सभा ने बहुत सी नई और उपयोगी पुस्तकें पुरस्कार और पदक देकर लिखवाई हैं।" इसके बाद आप ने पृथ्वीराजरासो का ज़िक्र किया और कहा कि यद्यपि सभा द्वारा प्रकाशित रासो में कुछ अंश प्रक्षिप्त या क्षेपक भी है तथापि उस रासो के असली होने में सन्देह नहीं है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के सम्बन्ध में आप ने कहा—"ऐसी दशा में जब कि युरोप ऐसे बड़े देश में जहाँ अनेक जातियाँ और भाषाएं हैं, लोग एस्पिरेण्टो को राष्ट्र भाषा बनाने का उद्योग करते हैं, तो यदि हम लोग भारतवर्ष में नागरी को राष्ट्र-लिपि बनाना चाहें तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है और यह बात सम्भव भी है।" सभा के पुस्तकालय का ज़िक्र करते हुए आप ने कहा—"यद्यपि हस्त-लिखित पुस्तकों के तो देशी रियासतों में बड़े बड़े पुस्तकालय हैं पर हिन्दी की छपी हुई पुस्तकों का सबसे बड़ा पुस्तकालय सभा में ही है।" ... ... "सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय यह है कि हम लोगों को सब से अधिक सहायता युक्त प्रान्त की सरकार से ही मिली है। प्रायः सभी छोटे लाट, कमिश्नर, कलक्टर तथा अन्य सरकारी आफ़िसर बराबर इस सभा की सहायता करते तथा उसके कामों से सहानुभूति रखते आये हैं। पर इस बात का मुझे दुःख है कि कभी कभी हमारी पुकार गवर्नमेण्ट तक नहीं पहुँचती। आज कल गवर्नमेण्ट के कारण कई अंशों में हिन्दी की हानि हो रही है। वह उर्दू और हिन्दी को एक कर रही है जिससे पढ़नेवालों को बहुत कठिनता होती है। लोगों के बहुत शिकायत करने पर सरकार ने विज्ञों (Experts) की एक कमेटी बनाई; पर वह विज्ञ ऐसे हैं जिनका हिन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक ओर तो सरकार इस बात की शिकायत करती है कि लोग उसे सहायता नहीं देते और दूसरी ओर सहायता के लिये वह ऐसे लोगों को चुनती है जो हिन्दी से कोई सरोकार नहीं रखते।" इसके बाद आप ने हिन्दी की कई पाठ्य पुस्तकों में से, उनकी भाषा-सम्बन्धी भद्दी अशुद्धियों के कई उदाहरण दिखलाये जिस पर लोगों में ख़ूब हँसी हुई। आगे चलकर आप ने कहा—"इस सम्बन्ध में सरकार बहुत अन्याय कर रही है। इस अवसर पर मेरे कथन का उद्देश्य यह है कि बहुत सम्भव है कि हमारी यह शिकायत सभापति महाशय के द्वारा छोटे लाट तक पहुँच जाय। एक बार शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के पास सभा का एक डेपुटेशन गया था। उस समय उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया था कि इन पुस्तकों की भाषा की शिकायत स्कूलों के इंसपेक्टर तक करते हैं।" ... ... "सुधाकर जी की आत्मा मुझे क्षमा करे, चलते चलाते वे भी हिन्दी का गला ख़ूब काट गये हैं। रामकहानी में उन्होंने भाषा का ख़ूब सत्यानाश किया है। उनकी यह पुस्तक शहर के लड़कों को देहाती बनाने का बहुत अच्छा साधन है। शकुन्तला ऐसी पुस्तक तो पाठ्य पुस्तकों में से निकाल दी जाय और रामकहानी उसके स्थान पर अचल हो जाय और हटाये भी न हट सके; यह भी हिन्दी का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। यदि सच पूछिये तो यह भी सर-

कार की पालिसी ही है। जहाँ हम लोग सरकार की कृपा का धन्यवाद देते हैं वहाँ हम लोग अपने कष्टों को उसके सामने उपस्थित करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं। आज कल की पाठ्य पुस्तकों की भाषा हमारे बच्चों को तुलसीकृत रामायण समझने योग्य भी न रक्खेगी। सरकार को चाहिए कि वह अपने भविष्य नागरिकों की रक्षा करे। कौंसिल में भी इस विषय की कुछ सुनाई होने की आशा नहीं दिखाई देती। लेकिन अभी शायद सरकार इस विषय पर विचार कर रही है और जबतक उसका निर्णय प्रकाशित न हो जाय तबतक हम लोगों को चुप रहना चाहिए। उस समय सभा फिर एक बार सरकार तक पहुँचेगी और उससे न्याय की प्रार्थना करेगी। हमें सरकार के साथ होकर चलना चाहिए, क्योंकि उससे हमारे कामों में सहायता मिलती रहती है।"

इसके बाद सभापति मि० मलोनी की वक्तृता आरम्भ हुई। सबसे पहले आप ने बा० श्यामसुन्दर-दास की वक्तृता और वक्तृत्व-शक्ति की प्रशंसा की और साथ ही सभा तथा उसके उद्देश्यों की सराहना की। आप ने कहा—"सभा में अच्छे अच्छे लोग सम्मिलित हैं, उसके पास धन भी है और उसके काम भी अच्छे होते हैं। पुस्तकों की खोज का काम बहुत उत्तम और आवश्यक है। इसमें तथा कोश में सब लोगों को सहायता देनी चाहिए। पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में जो शिकायत की गई है, उसके दूर करने में जहाँ तक हो सकेगा सहायता दी जायगी, पर वक्ता महाशय की दो एक बातों से मेरा मतभेद है। भाषा में बराबर परिवर्त्तन होता है। जब मुसलमान इस देश में आकर बस गये तो उनकी भाषा के शब्दों का इस देश की भाषा में मिलना अनिवार्य्य था। फ़ारसी और इस देश की भाषा मिलकर और उसमें कुछ परिवर्त्तन होकर उर्दू भाषा बन गई। उन लोगों की भाषा का प्रभाव इस देश की भाषा पर भी पड़ा। इङ्गलैण्ड में नार्मनों की विजय (Norman Conquest) के बाद फ्रेञ्च और एंग्लो-सैक्सन (Anglo-Saxon) भाषाओं में वही झगड़ा रहा जो आज कल इस देश में उर्दू और हिन्दी का है। लेकिन सैक्सन भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द मिलते गये और इसी लिये अँगरेज़ी की इतनी उन्नति भी हुई। यदि हम लोग केवल सैक्सन भाषा को लेकर बैठे रहते तो अँगरेज़ी भाषा इतनी उन्नत न दिखलाई पड़ती। पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में सरकार के सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित है। यदि हिन्दी और उर्दू की प्रारम्भिक शिक्षा के लिये अलग अलग स्कूल खोले जाँय तो उसमें ख़र्च बहुत अधिक पड़ेगा।

यदि सभा को इन पाठ्य पुस्तकों की भाषा का विरोध हो तो उसे उचित मार्ग से सरकार तक अपनी प्रार्थना पहुँचानी चाहिए। आशा है कि वह अवश्य ध्यान देगी।" इसके बाद आप ने अन्त में फिर कोश और खोज के काम की प्रशंसा की और कहा कि खोज के काम में सर्वसाधारण को भी उदारता दिखलानी चाहिए। सभापति महाशय के वक्तृता समाप्त होने पर उन्हें धन्यवाद दिया गया और करतल-ध्वनि होने के बाद सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

सभा का कार्य-विवरण।

प्रबन्ध-कारिणी-समिति।

सोमवार ता० २९ सितम्बर १९१३—संध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३० अगस्त १९१३) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) बाबू ब्रजचन्द्र का १८ सितम्बर १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि (क) प्रति वर्ष विद्वानों की एक कमेटी नियत कर दी जाया करे जो प्रकाशित पुस्तकों पर अपनी सम्मति दिया करे और जिनकी सम्मति के अनुसार उत्तम पुस्तकों के नाम वार्षिक रिपोर्ट में दिए जाया करें, (ख) जो पुस्तकें सभा के पुस्तका-

लय के लिये आवें उनके विषय में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में विशेष रूप से सम्मति प्रकट की जाया करे, (ग) हस्तलिखित अमूल्य ग्रंथों, शिला-लेखों, ताम्रपत्रों, पुराने सिक्कों, प्राचीन चित्रों तथा पुरातत्त्व सम्बन्धी अन्य सामग्री का एक संग्रह सभाभवन में रक्खा जाय।

निश्चय हुआ कि (क) सभा की वार्षिक रिपोर्ट में उत्तम पुस्तकों के विषय में जितना उल्लेख रहता है उससे कुछ अधिक विवरण के दिए जाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। सभा के सभापति अपनी वार्षिक वक्तृता में यदि उचित समझें ते। विशेष रूप से इनके विषय में उल्लेख कर सकते हैं, (ख) पुस्तकालय के निरीक्षक से प्रार्थना की जाय कि वे ऐसी पुस्तकों की एक सूची बना कर दिया करें और वह सूची सभा के कार्य-विवरण के साथ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में छाप दी जाया करे, (ग) यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय और प्रस्तावकर्त्ता से प्रार्थना की जाय कि इस की कार्य-प्रणाली आदि के सम्बन्ध में वे कृपा-पूर्वक विस्तृत रूप से अपने प्रस्ताव उपस्थित करें।

(३) साहित्याचार्य्य पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० ए० का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने हिन्दी में समाज-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया था और पूछा था कि यह पुस्तक किस ढँग की लिखी जाय।

निश्चय हुआ कि पण्डित ज्वालाप्रसाद शर्म्मा को लिखा जाय कि वे इस सम्बन्ध में विस्तृत रूप से अपने प्रस्ताव भेजें और तब यह विषय आगामी अधिवेशन में समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(४) बुलन्दशहर की नागरी-प्रचारिणी सभा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने यहाँ की कलेकृरी में नागरी का एक लेखक नियत करने के लिये सभा से आर्थिक सहायता माँगी थी।

निश्चय हुआ कि सभा के। दुःख है कि धनाभाव से इस समय वह कुछ सहायता नहीं दे सकती।

(५) पण्डित केदारनाथ पाठक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बाबू राधाकृष्णदास के जीवन-चरित के तैयार करने में ग्रन्थकार को उन्होंने बड़ी सहायता दी थी अतः उन्हें इस पुस्तक की कुछ प्रतियाँ बिना मूल्य दी जानी चाहिएँ।

निश्चय हुआ कि पाठक जी का पत्र इस ग्रन्थ के लेखक—पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के पास भेजा जाय और उन्हें लिखा जाय कि इस पुस्तक की जितनी प्रतियाँ वे उचित समझें पण्डित केदारनाथ पाठक को दें।

(६) निश्चय हुआ कि सभा के स्थायी कोश में अब तक जितना द्रव्य प्राप्त हुआ है उसका पूरा हिसाब समिति की सूचना के लिये आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(७) वेतनवृद्धि के लिये सभा के क्लार्क बाबू माधवसिंह और पण्डित काशीप्रसाद तिवारी के प्रार्थना पत्र उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि धनाभाव से इस समय उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गौरीशंकरप्रसाद।
मंत्री

—:o:—

भाग १८ } नवंबर और दिसंबर १९१३ { संख्या ५—६

हिन्दी का महत्त्व ।

(लेखक—पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०)

यह एक बड़ा ही गम्भीर विषय है, जिस पर छोटा और बड़ा, हर प्रकार का लेख लिखा जा सकता है। मुझे आज्ञा मिली है कि इसी गहन विषय पर आप लोगों के सम्मुख अपने विचार उपस्थित करूँ। इस विस्तीर्ण पांडित्य-पूर्ण विषय पर यदि किसी पंडित को कुछ कथन करने की आज्ञा मिलती, तो वह आज आप लोगों के सामने वह वह उच्च विचार उपस्थित करता कि आप भी प्रसन्न हो जाते। जान पड़ता है कि आप की इच्छा आज पांडित्य-पूर्ण लेख सुनने की नहीं है, प्रत्युत बाल-क्रीड़ा देखने की है, तब न आपने बालकों के समान ही ज्ञान-धारी मुझ ऐसे अल्पज्ञ को यह सेवा सैांपी है। अतः बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य समझ कर "निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहिँ अकास" के अनुसार यह लेख आप लोगों की सेवा में समर्पित करता हूँ।

हिन्दी के विचार में भाषा और वर्ण दोनों का कथन आता है। भाषा में साहित्य मुख्य है; अतः हम उसी से इस लेख का आरम्भ करते हैं। साहित्य अथवा काव्य का शुद्ध लक्षण क्या है, इस विषय पर पंडितों का मत अब तक सर्वसम्मति से किसी ओर नहीं झुक सका है। फिर भी बहुमत का झुकाव इस ओर समझ पड़ता है कि "काव्य वह वाक्य है जिसके शब्द, अर्थ या दोनों से अलौकिकानन्द प्राप्त हो"। साहित्य के गद्य, पद्य और नाटक नामक तीन विभाग हैं। बहुत से लोग गीतों का एक चौथा विभाग सा मानते हैं, विशेषतया पाश्चात्य महाशय गण। विषय के अनुसार गद्य, पद्य और नाटक में यह भेद है कि गद्य में विचारों का भावों से बहुत आधिक्य रहता है, पद्य में ये दोनों प्रायः सम भाव से रहते हैं और गीतों में भावों का आधिक्य विशेषता से हो जाता है। विषय के अनुसार देखने से पद्य और गीत-

विभाग पृथक् पृथक् हो जाते हैं, किन्तु वास्तव में ये मिले हुए हैं और गीत भी पद्य का ही एक भाग है। गद्य के उपविभाग थोड़े ही से हैं, किन्तु पद्य के बहुत अधिक। नाटक के उपविभाग गद्य से अधिक हैं। नाटक को बहुधा दृश्य काव्य कहते हैं और गद्य एवं पद्य को श्रव्य काव्य।

हमारे यहाँ संस्कृत एवं भाषा दोनों में काव्य के दश अंग माने गये हैं। इसीलिये बहुधा लोग दशांग काव्य-ज्ञाता इत्यादि का कथन किया करते हैं। काव्य के अंगों का जिस उत्कृष्टता और विस्तार के साथ कथन हमारे यहाँ है, वैसा अन्यत्र स्वप्न में भी नहीं पाया जायगा। अँगरेज़ी भाषा में मेटानिमी, सेनेकडकी, सिमिली, मेटाफ़र आदि दस ही पाँच काव्यांगों का कथन बहुत समझा गया है किन्तु हमारे यहाँ एक एक अंग के अनेकानेक उपांग कहे गये हैं, यहाँ तक कि भावभेद के अन्तर्गत केवल नायिकाभेद के ३८४ उपभेद कहे गये हैं। इस दशांग वर्णन को हमारे यहाँ रीति वर्णन कहते हैं। इसके अंग ये हैं—पदार्थनिर्णय, पिंगल, गणागण, गुण, दोष, दोषोद्धार, भाव, रस, वृत्ति, पात्र और अलंकार। पदार्थनिर्णय में शब्दों और वाक्यों के शुद्ध अर्थ लगाने में जिन जिन शक्तियों और विचारों की आवश्यकता होती है उनका कथन है। इसमें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि और तात्पर्य्य प्रधान हैं। इनमें से प्रथम तीन विशेषतया शब्दों के सहारे पर चलती हैं और अन्तिम दो वाक्यों के। इन शक्तियों से कोष से कोई सरोकार नहीं। कोष जानने पर भी मनुष्य बिना इनकी सहायता के शुद्ध अर्थ नहीं लगा सकता। इनमें से भी एक एक के अनेकानेक भेदान्तर हैं। जो महाशय व्यंजना और ध्वनिभेद को भली भाँति समझ लेवें, वे भाषा काव्य-प्रणाली के अच्छे ज्ञाता समझे जांयगे।

पिंगल में मेरु, पताका, मर्कटी, नष्ट उद्दिष्ट, और प्रस्तार एक प्रकार से गणित शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। इनके द्वारा गणित के कई भाग नये नियमों से सिद्ध होते हैं। किन्तु इन सबका जानना पिंगल-ज्ञान के लिये आवश्यक नहीं है। हमारे यहाँ छन्दों की संख्या अनन्त है। अन्य भाषाओं में दस बीस प्रकार के छन्द बहुत समझे गए हैं। किन्तु हमारे यहाँ सैकड़ों प्रकार के छन्द प्रस्तुत हैं और सैकड़ों नए छन्द पिंगल में कथित नियमों से बनाए जा सकते हैं। छन्द का विषय हमारे यहाँ बहुत परिपूर्ण है और अनेक आचार्य्यों ने इसी का कथन किया है। इनमें से सुखदेव मिश्र, मनीराम मिश्र और दास प्रधान हैं। अन्य आचार्य्यों ने भी विस्तारपूर्वक यह विषय कहा है।

गणागण-विचार बहुत कम भाषाओं में पाया जायगा। इस में नर काव्य वाले छन्दों के आदि में प्रथम तीन और प्रथम छः अक्षरों पर विचार करके उनके देवताओं के अनुसार फलाफल सोचा जाता है। वास्तव में इस विषय का धर्म्म से विशेष सम्बन्ध है और काव्य से थोड़ा। जो लोग इस विषय के धर्म पर विश्वास नहीं रख सकेंगे, वे इसे अनावश्यक समझेंगे। किन्तु काव्य को धर्म्म से मिला कर सब अड़चनों से बचाते हुए उसे निभा ले जाना थोड़ी बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। गुणों में अट्ठारह गुण प्रधान माने गए हैं और हमारे साहित्य पर विचार करने से ज्ञात होगा कि इनका समावेश कवियों ने बहुतायत से किया है। अन्य भाषाओं में भी ये पाए जांयगे, किन्तु इस आधिक्य से नहीं। दोषों का भी वर्णन हमारे यहाँ बहुत अधिकता से हुआ है, यहाँ तक कि बहुत सूक्ष्मदर्शिता से देखने पर बहुत कम छन्द ऐसे मिलेंगे जिन में कोई भी छोटा या बड़ा दोष न स्थापित किया जा सके। कुलपति मिश्र ने दोषों का वर्णन अच्छा किया है। दोषोद्धारों का भी कथन हमारे यहाँ बहुतायत से हुआ है। भाव-भेद, रसभेद और अलंकार हमारी रीति-काव्य के जीव हैं। इन्हीं पर उसका गौरव बहुतायत से आ-लम्बित है। ध्वनिभेद और इनका जानने वाला रीति का पूर्णज्ञ कहा जा सकता है। इन्हीं के विषय में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि—

आखर अरथ अलंकृत नाना।
छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा।
कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
तीन बिबेक एक नहिँ मोरे।
सत्य कहीं लिखि कागद कोरे॥

भाव के षट् उपभेद हैं, अर्थात् स्थायी, अनुभाव विभाव, सात्विक, संचारी और हाव। इन्हीं का सांगोपांग अध्ययन करने से एक अनभिज्ञ भी समझ सकता है कि कोई भाव किस प्रकार से उठ कर स्थिर होता, किस के सहारे से, किस मौक़े पर, उसके अनुगामी क्या क्या होते हैं और उसका प्रत्यक्ष फल देह पर क्या देख पड़ता है? इस प्रकार से भाव के अंकुरित होने से उसके पूर्णरूपेण दृढ़ हो जाने तक का वर्णन आचार्य्यों ने भावभेद, और रस-भेद में कर दिया है। इनके ज्ञान लेने से एक साधारण मनुष्य भी काव्यरचना कर सकता है। कम से कम एक साधारण कवि को भी ज्ञान पड़ेगा कि किन वर्णनों के पीछे कैसे वर्णन होने चाहियें। इनका जानने वाला सहज ही में किसी कवि के साहित्य ज्ञान का पता लगा सकता है। यदि वह कवि उचित रीति से पूर्वापर क्रम से वर्णन करता चला जायगा, तो उसकी रचना में रसपूर्ण होते जावेंगे और सुप्रबंध गुण एवं स्वभावोक्ति की अधिकता होगी; अन्यथा भावोदय और भावशान्ति साथ ही साथ कहे जांयगे, जिससे रचयिता की शक्तिहीनता का पता लगेगा। इसी भाँति रस-शत्रु और रस-मित्र को ज्ञान लेने से मनुष्य जान सकता है कि कैसे वर्णनों का साथ कथन होना स्वाभाविक है और कैसों का नहीं? भावभेद और रसभेद के विस्तीर्ण वर्णन स्वभावोक्ति एवं सुप्रबन्ध गुण के बड़े ही अच्छे पोषक हैं। इनको जानने से एक अज्ञ भी प्रकृति के अनुकूल वर्णन कर सकेगा।

अलंकार काव्य-शरीर के अलंकारों के समान हैं। इसके जानने से साहित्य में स्वभावोक्ति सम्बन्धिनी पूर्णता तो नहीं आवेगी, किन्तु उसका चमत्कार बहुत बढ़ जायगा। अलंकार शब्द और अर्थ सम्बन्धी होते हैं। शब्दालंकारों से भाषा का चमत्कार बढ़ता है और अर्थालंकारों से अर्थ-सम्बन्धी चमत्कार की वृद्धि होती है। कुल मिलाकर सौ से ऊपर अर्थालंकार हैं और सात या आठ शब्दालंकार। इनके अतिरिक्त सात आठ परांग हैं, जिनकी गणना अलंकार और रस दोनों में हो सकती है। अर्थ वाले अलंकारों में से बहुतों में एक एक के कई उपभेद हैं। केवल असम्भव हमारे यहाँ छः प्रकार का कहा गया है। यही दशा अनेकानेक अन्य अंगों की है। अलंकार, रस भाव आदि पर सैकड़ों हज़ारों ग्रन्थ हमारे यहाँ वर्त्तमान हैं, जिनके पढ़ने से विदित होता है कि हमारे कवियों ने कितना प्रचुर बुद्धिबल व्यय करके हज़ारों ग्रन्थ रचे हैं। एक एक छन्द पर दस दस प्रकार के भाव सोचे जा सकते हैं और एक एक छन्द के अर्थ लगाने से सात सात आठ आठ पृष्ठ लिखने से भी सब प्रकार के साहित्य गुण नहीं दिखलाये जा सकते हैं। वृत्ति और पात्र विचार रस विचार से बहुत कुछ मिलते हैं।

साहित्यरचना और तद्गुणग्रहण, इन दोनों बातों में हमारे यहाँ प्रचुर परिश्रम हुआ है। रचना में जैसे जैसे ऊँचे विचार लाये गये हैं वैसे ही साहित्याचार्य्यों ने दूसरों की रचनाओं में दिखलाने में भी श्रम किये हैं। बहुत सी टीकायें हमारे आचार्य्यों ने पद्य में भी रची हैं।

हम गद्य, पद्य और नाटक नामक साहित्य के तीन भाग ऊपर कह आये हैं। इन तीनों के विषय में यहाँ कुछ इतिहाससम्बन्धी घटनायें भी कहना उचित समझ पड़ता है। वास्तव में पद्य का इतिहास हमारे यहाँ साहित्य ही का इतिहास है, क्योंकि पद्य की मात्रा आनुषंगिक दृष्टि से इतनी अधिक है कि गद्य और नाटक उसके किसी अंश में भी नहीं आते हैं। इस कारण से हम नाटक और गद्य का सूक्ष्म

इतिहास पहले कह कर फिर पद्य का इतिहास सम्बन्धी कुछ चमत्कारिक भाग दिखलाने का प्रयत्न करेंगे।

नाटक का प्रादुर्भाव हमारी कविता में पहले पहल विहारी कवि शिरोमणि विद्यापति ठाकुर से हुआ। रास-मंडलियाँ भी एक प्रकार से नाटक ही खेलती हैं और इनका प्रचार व्रज में अच्छा रहा है, किन्तु फिर भी नाटक का प्रादुर्भाव वहाँ से न हो कर विहार से हुआ। विहार ही की ओर हिन्दी-नाटकों ने बल पाया और शेष हिन्दीभाषी देशों में न उनका विशेष प्रचार हुआ और न निर्माण ही आधिक्य से किया गया। विद्यापति ठाकुर ने पारिजातहरण और रुक्मिणीपरिणय नामक दो नाटक ग्रन्थ रचे। आपका रचनाकाल संवत् १४४५ के निकट है। आप के पीछे कई विहारी कवियों ने नाटक रचे और वे अब तक रच रहे हैं; किन्तु इस ओर फिर भी नाटकों का प्रचार नहीं हुआ। महाकवि केशवदास ने विज्ञानगीता नामक एक नाटक-ग्रन्थ रचा, किन्तु फिर भी यह पूर्ण नाटक नहीं है। इन का रचनाकाल संवत् १६४८ से ७४ तक चलता है। महाकवि देव जी ने देवमायाप्रपंच नाटक नामक एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ रचा, किन्तु यह भी पूर्ण नाटक नहीं है। ये ग्रन्थ प्रबोधचन्द्रोदय के ढंग पर हैं। प्रबोध चन्द्रोदय के हमारे यहाँ कई अनुवाद हुए, किन्तु कोई भी बहुत उत्तम नहीं बना। वास्तव में वह संस्कृत में भी एक साधारण ग्रन्थ मात्र है।

देव जी ने संवत् १७४६ से १८०० के लग भग तक रचना की। इनके पीछे भी बहुत दिनों तक अच्छे नाटक नहीं बने। इधर आकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कई परमोत्कृष्ट नाटक ग्रन्थ रचे। इनमें से कुछ ग्रन्थ शेक्सपियर के ग्रन्थों तक का पूरा सामना करते हैं। इसी समय के पीछे और इस से कुछ पहले भी अनेक सुकवियों ने अनेकानेक उत्कृष्ट नाटक रचे यहाँ तक कि इस समय प्रायः सौ डेढ़ सौ नाटक ग्रन्थ हमारे यहाँ हो गये हैं, जिनमें बहुतेरे अच्छे भी हैं।

गद्य तो भाषा के जन्म से ही लिखा और बोला जाता था, किन्तु प्राचीन गद्य के उदाहरण इस समय बहुत नहीं मिलते। सबसे पुराने गद्य के उदाहरण महाराजा पृथ्वीराज और उनके बहनोई रावल समरसिंह के समय के मिलते हैं। ऐसे नौ उदाहरण प्राचीन ताम्रपत्रों पर से काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने खोज निकाले हैं। किन्तु ये उदाहरण साहित्य के न होकर साधारण गद्य के हैं। सबसे पहले गद्य-साहित्यनिर्माता प्रसिद्ध महात्मा गोरखनाथ हैं, जिन्होंने जगत्प्रसिद्ध गोरखपन्थ चलाया। आपका रचनाकाल संवत् १४०७ के लगभग है, सो इसी संवत् में हमारे गद्य काव्य ने हरिगुणगान के साथ जन्म ग्रहण किया। इनके पीछे गंगा भाट नामक एक कवि ने अकबरशाह के समय में चन्द छन्द बरनन की महिमा नाम्नी खड़ी बोली के गद्य में एक पुस्तक रची और सं० १६८० में जटमल नामक कवि ने खड़ी बोली के गद्य में गोरा बादल की कथा बनाई।

इन गद्यलेखकों के अतिरिक्त सं० १६०० के लगभग प्रसिद्ध महात्मा वल्लभाचार्य्य के पुत्र विट्ठलजी ने शृंगाररसमंडन नामक व्रजभाषा गद्य का एक ग्रन्थ रचा और इनके पुत्र गोकुल नाथजी ने दो बड़े ग्रन्थ व्रजभाषाभा गद्य में बनाये। इनके पीछे तुलसीदास, केशवदास, देवदास आदि अनेकानेक सुकवियों के गद्य वाले उदाहरण मिलते हैं, किन्तु इनके गद्य ग्रन्थ नहीं हैं, केवल उदाहरण देख पड़ते हैं। इस समय से अनेकानेक टीकाकारों ने व्रजभाषा गद्य में भारी भारी कवियों के उत्कृष्ट ग्रन्थों की टीकायें रची हैं। इस प्रकार के बहुत से प्राचीन ग्रन्थ देख पड़ते हैं। सुरति मिश्र ने संवत् १७६७ में व्रजभाषा गद्य में बैताल पचीसी नामक ग्रन्थ रचा। इसी प्रकार के कुछ अन्य ग्रन्थ भी बनाये गये, किन्तु फिर भी गद्य काव्य का अच्छा प्रचार नहीं हुआ।

समय पाकर जब अँगरेज़ी राज्य यहाँ फैला और पठन पाठन की प्रणाली ने उन्नति पाई, तब पाठशालाओं के लिए गद्य ग्रथों की आवश्यकता हुई।

ऐसी दशा में गद्य ग्रन्थों का अभाव सा देख कर सरकार ने सं० १८६० में लल्लूलाल तथा सदल मिश्र से ग्रैार पीछे से राजा शिवप्रसाद से अच्छे गद्य-ग्रन्थ बनवाये। उन दोनों कवियों ने खड़ी बोली के साथ व्रजभाषा का भी थोड़ा बहुत संसर्ग रक्खा; किन्तु राजा साहब ने पहले पहल शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग किया। उनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह ने श्रेष्ठतर भाषा में रचना की ग्रैार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने गद्य की महिमा आर्य्य-समाज ग्रैार अपने पुनीत ग्रन्थों से ग्रैार बढ़ाई।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से वर्त्तमान गद्य का प्रारम्भ होता है। इन्होंने बहुत अच्छा गद्य लिखा ग्रैार नाटकों तथा पत्र पत्रिकाओं द्वारा इस का बहुत विशद समादर एवं प्रचार बढ़ाया। इनकी भाषा उचित संस्कृतांश लिए हुए ख़ूब मज़े की थी। पीछे से लेखकों ने संस्कृत के शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग बढ़ाया ग्रैार वे अब भी बढ़ाते जाते हैं। संस्कृत शब्दों का अधिक बढ़ना बहुत से लोग इस कारण से पसन्द नहीं करते हैं कि उनके कारण से हिन्दी गूढ़तर होती जाती है ग्रैार उसे एक दूसरी भाषा का आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि यद्यपि संस्कृत एक आर्य्य भाषा है, तथापि हिन्दी के लिए एक भिन्न भाषा अवश्य है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी को गैारव संस्कृत से ही प्राप्त हुआ है ग्रैार भविष्य में भी हो सकता है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा बनाने के लिए विशेष संस्कृताश्रय आवश्यक है, क्योंकि एक देशीय शब्दों के आधिक्य से बंगाली, मदरासी, महाराष्ट्र, गुर्जर, पंजाबी आदि महाशय हिन्दी को नहीं समझ सकेंगे, किन्तु यदि उसमें संस्कृत शब्दों का प्राधान्य रहेगा, तो लोग उसे अधिक सुगमता से समझ लेंगे, अथवा कम से कम उसका भाव हृदयंगम कर लेंगे।

हिन्दी का सब से बड़ा गैारव यह है कि यह भाषा सारे हिन्द की एक प्रकार से राष्ट्र भाषा अथवा लिंगुवा फ़्रैंका है। इसकी सीमायें बंगाली, मदरासी, महाराष्ट्री, गुर्जर, राजपूतानी, पंजाबी, कशमीरी, नैपाली आदि सभी भाषाओं से मिलती हैं ग्रैार यद्यपि वे सब भाषायें एक दूसरी से नितान्त पृथक् हैं, तथापि हिन्दी से वे सब कुछ कुछ मिलती हैं अतः हिन्दी उन सब के लिए राज़ीनामा या मिश्रणस्थल है। यदि कोई एक भाषा सारे भारत के लिए सार्वदेशिक भाषा हो सकती है, तो वह अवश्यमेव हिन्दी है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हमारे अक्षर भी भारत के शेष सभी अक्षरों से श्रेष्ठतर हैं। अक्षरों के लिये चार बातें मानी गई हैं, अर्थात् सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन उपयोगिता ग्रैार सुन्दरता। इन चारों बातों का सार इसी क्रमानुसार है। अक्षरों के लिए सब से अधिक आवश्यक गुण सामर्थ्य है। अर्थात् वर्णमाला में यह शक्ति होनी चाहिये कि वह मनुष्यों द्वारा व्यवहृत सब प्रकार की ध्वनियों को सफलतापूर्वक लिख सके, ग्रैार प्रत्येक ध्वनि के लिये उसमें एक ही चिह्न हो, सीन, स्वाद, से, की भाँति अनेक नहीं। अनेक चिह्नों में जिज्ञासु भ्रमवश नहीं जान सकता कि वह कब किसका प्रयोग करे। यह गुण हमारी वर्णमाला में पूर्णता से है। उर्दू में सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जो शुद्धता-पूर्वक लिखे ही नहीं जा सकते। ऊधव शब्द लिखकर उर्दू में उसे अनेकानेक प्रकार से पढ़ सकते हैं। यही दशा अँगरेज़ी आदि पाश्चात्य भाषाओं की है।

सामर्थ्य के पीछे सरलता भी वर्णों के लिये आवश्यक है। यदि ध्वनियों के लिये चिह्न ऐसे पेंचदार हों कि उनका स्मरण रखना ही कठिन हो, तो उनका सीखना दुर्घट होने से उनसे लाभ कम होगा। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे वर्णों में सरलता देशी ग्रैार विदेशी सभी वर्णों से अधिक है। त्वरालेखन-उपयोगिता ग्रैार सुन्दरता में कुछ कुछ विरोध पड़ता है, क्योंकि जो चिह्न जल्दी लिखा जावेगा वह भ्रमहीन तथा सुन्दर नहीं होगा। सुन्दर चिह्न बिना अधिक समय लगाने के नहीं बन

सकता। रोज़ाना कारबार के लिये शीघ्रता विशेष आवश्यक है और चिरकाल रक्खे जाने वाले लेखों के लिये सुन्दरता एक प्रशंसनीय गुण है। हमारे यहाँ वर्णों के शिरों पर रेखा केवल सुन्दरता के लिये लगाई गई है, अन्यथा इसका कोई प्रयोजन नहीं। भ, म, घ, ध, आदि में थोड़ा अन्तर डाल देने से बिना शिरोभाग की रेखा के भी काम चल सकता है। यही रेखा हमारे वर्णों की सुन्दरता बढ़ाती और शीघ्रलेखन शक्ति को घटाती है। आज कल कामकाज की वृद्धि से शीघ्रता भी एक आवश्यक गुण हो गया है। इन कारणों से पंडित समाज का विचार है कि साधारण रोज़ाना लेखों में शिरोभाग की रेखा न लिखी जाय, किन्तु चिरकाल स्थिर रखने वाले लेखों तथा छपी हुई पुस्तकों में इसका स्थिर रखना आवश्यक है। इस प्रकार हमारी वर्ण-माला में त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता दोनों स्थिर रहेंगी।

उपर्युक्त कथन में यह सिद्ध नहीं किया गया है कि हिन्दी अक्षरों में सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता भारतवर्ष में प्रचलित शेष सभी वर्णमालाओं से अधिक है; वरन् यह बात मान ली गई है। इसके सिद्ध करने के लिये एक भारी लेख की आवश्यकता है। ऐसा एक लेख हमने लिखा है और वह छपने गया है। यहाँ दिग्दर्शन की भाँति वर्णमाला के लिये आवश्यक गुण दिखलाए गए हैं। हिन्दी में इन गुणों का होना प्रमाणित होने के लिये देश के सभी अक्षरों को नागराक्षरों से मिलाना होगा। जो लोग सब अक्षरों को जानते हैं अथवा पा सकते हैं, वे जानेंगे कि शिरोभाग की रेखा छोड़ देने से नागराक्षरों की सरलता और त्वरालेखन-उपयोगिता और अक्षरों से बढ़ जाती है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि भारत में राष्ट्र-लिपि और राष्ट्र भाषा होने की योग्यता हिन्दी के अक्षर और भाषा दोनों में है। इसमें एक यह भी बहुत बड़ा गुण है कि इसके अक्षर और भाषा के अन्यान्य अक्षरों और भाषाओं के सामने बहुत अधिक देश और जन-संख्या में प्रचलित हैं। इनकी प्राचीनता भी सबसे बहुत अधिक है और हिन्दीसाहित्य भारत के अन्य साहित्यों से गुणों एवं पूर्णता में बहुत बढ़ा हुआ है।

ऐसी दशा में यह प्रश्न उठता है कि जब यह भाषा सब प्रकार से राष्ट्रीयता के योग्य है, तब इसका शब्दभंडार एवं उसका उपयोग ऐसा क्यों न बनाया जाय कि अन्य देशों के निवासी पंडित गण इसे समझें, अर्थात् इसमें संस्कृत के अधिकाधिक शब्द क्यों न लाये जावें? इस प्रश्न को इस भाँति कहने पर सभी लोग इसका उत्तर 'हाँ' में देना चाहेंगे। माननीय बाबू शारदाचरण मित्र ने ऐसा ही कहा भी है। किन्तु इसी के साथ ही इससे भी अधिक महत्ता का दूसरा प्रश्न उठता है, और वह यह है कि, क्या अन्यदेशीय कुछ पंडितों के समझने योग्य करने के लालच से हम हिन्दी को ऐसा बनाना चाहते हैं कि उसी के देशों वाले साधारण जनसमुदाय उसे न समझ सकें, अर्थात् वह विदेशियों को सुगम और स्वदेशियों को दुर्ज्ञेय हो जावे? इन कारणों से हमारा मत है कि हिन्दी की ऊँची शैली वाली और महत्तायुक्त पुस्तकों में संस्कृतमिश्रित भाषा लिखी जा सकती है; किन्तु साधारण पुस्तकों में साधारण एवं शुद्ध हिन्दी लिखनी चाहिये। ऊँची श्रेणी की पुस्तकों में भी प्रबन्धध्वनि, रस, अलंकार आदि अनेकानेक चमत्कार लाकर उत्तमता की वृद्धि होनी चाहिये, केवल संस्कृतवृद्धि से नहीं। भारतेन्दु बाबू हरिचन्द्र के पीछे गद्योन्नति अच्छी हुई और अनेकानेक विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकें हमारे यहाँ रची गईं। अब हमारा गद्य-भंडार कृश नहीं है और दिनों दिन उन्नति कर रहा है। हमारा प्राचीन साहित्य पद्य ही है। हिन्दी का पहला ग्रन्थ पुष्य बन्दीजन-कृत एक अलंकारों का ग्रन्थ है, जिसमें दोहाओं द्वारा वर्णन है। कहते हैं कि यह संवत् ७७० में बना। इससे हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग

समझ पड़ती है। उस समय से अब तक के साहित्य काल को हमने अपने इतिहास-ग्रन्थ में आठ मुख्य भागों में विभक्त किया है। उनके नाम ये हैं:—

पूर्व-प्रारम्भिक हिन्दी (संवत् ७००—१३४४), उत्तर-प्रारम्भिक हिन्दी (१३४५—१४४४), पूर्व-माध्यमिक हिन्दी (१४४५—१५६०), प्रौढ़-माध्यमिक हिन्दी (१५६१—१६८०), पूर्वालंकृत हिन्दी (१६८१—१७९०), उत्तरालंकृत हिन्दी (१७९१—१८८९), परिवर्त्तन-कालिक हिन्दी (१८९०—१९२५) और वर्त्तमान हिन्दी (१९२६—अब तक)।

पूर्व प्रारम्भिक काल में थोड़े से ही कवि हुए, जिनमें चन्द और जल्हन प्रधान थे। इस समय में हिन्दी का प्राकृत भाषा से कुछ कुछ सम्बन्ध था। चन्द हमारे यहाँ का मानो वासर या वाल्मीकि है। इसने परम प्राचीन कवि होने पर भी युद्ध, श्रृंगार और मृगया के बहुत बढ़िया वर्णन किये और अनेकानेक अनमिल विषयों को भी सफलतापूर्वक व्यक्त किया। इसके रासो ग्रन्थ में वर्णन-पूर्णता और विषय-बाहुल्य के अच्छे चमत्कार देख पड़ते हैं।

उत्तर-प्रारम्भिक काल में महात्मा गोरखनाथ प्रधान कवि थे। इनके द्वारा समादृत हो कर हिन्दी ने ब्राह्मणों एवं पंडितों में भी मान पाया और समय पर बड़े बड़े ऋषियों तथा महाराजाओं ने इसका ऐसा स्वच्छ समादर किया, यहां तक कि उन्होंने स्वयं उसमें साहित्य-रचना की और सैकड़ों कवियों को आश्रय प्रदान किया। ऋषि-समादर एवं राज-मान हिन्दी का बहुत बड़ा सौभाग्य रहा है। इतने राजाओं और ऋषियों ने किसी अन्य भाषा में साहित्यरचना न की होगी। राजाओं ने हमारे कवियों को पुरस्कार भी बहुत भारी दिये, यहां तक कि एक एक छन्द पर छत्तीस छत्तीस लाख रुपयों के दान हुए हैं। पूर्व-माध्यमिक काल में विद्यापति और कबीरदास बड़े ही अच्छे कवि हुए और महात्मा रामानन्द ने हिन्दी को अपनाया। विद्यापति ने साधारण बोल चाल में ही वह अलौकिक काव्यछटा दिखलाई, जिससे पाठक का मन मुग्ध हो जाता है। कबीरदास ने भी रोज़ाना बोलचाल ही में अकथनीय साहित्य-सौन्दर्य भर दिया है। इनकी उल्टवाँसी बहुत प्रसिद्ध और आदरणीय हैं। महात्मा कबीरदास की रचनाओं में यद्यपि तुलसीदासजी की सी भक्ति-प्रगाढ़ता नहीं देख पड़ती है, तथापि उनमें सभी जगह सदुपदेश भरे हैं और साधारण घटनाओं के सहारे से इन्होंने बड़े बड़े दार्शनिक सिद्धान्त दिखलाए हैं। इनकी रचनाओं में अनोखापन ख़ूब है और वे सभी स्थानों पर खरी हैं। महात्मा वल्लभाचार्य्य और चैतन्य महाप्रभु ने इसी समय उत्तरी भारत में वैष्णवता द्वारा भक्ति-तरंगिणी की अटूट धारायें प्रवाहित कीं। वल्लभाचार्य्य से हिन्दी-साहित्य को बहुत बड़ा लाभ पहुँचा। इन के कारण से अनेकानेक ऋषियों ने भजनों द्वारा कृष्ण-यश का समय पर गान किया।

प्रौढ़ माध्यमिक काल में सैकड़ों सुकवि हुए, किन्तु उन में भी महात्मा सूरदास, हित-हरिवंश, नन्ददास, तुलसीदास, केशवदास, मीराबाई, जायसी, नरोत्तनदास, गंग, तानसेन, हरिदास, रहीम, रसखान, बीरबल, सुन्दरदास, घासीराम आदि बड़े बड़े कवि हुए।

महात्मा सूरदास के शरीर में मानो स्वयं वाल्मीकि ने दूसरा शरीर ग्रहण किया था। इन्होंने सैकड़ों विषयों का सांगोपांग विस्तार-पूर्वक कथन किया और जिसका वर्णन किया, उसकी तसवीर सी सामने खड़ी कर दी। वर्णन-पूर्णता में वाल्मीकि को छोड़ कर कोई भी कवि इस महात्मा की बराबरी नहीं कर सकता। ऐसा सजीव वर्णन प्रायः कोई भी कवि नहीं कर सका। यदि जी लगा कर इन का कृष्ण-बालचरित्र एक बार पढ़िये ते बहुत काल तक चित्त से खेलती हुई बालक की तसबीर नहीं हटती। यही दशा अन्य वर्णनों की भी है। इनकी रचना कोरी रचना नहीं समझ पड़ती, वरन् उससे सजीवपन भासित होने लगता है और चित्त में उसका नाटक सा ऐसा अंकित हो जाता है कि महीनों तक भुलाये नहीं भूलता। कारण यह है कि इन्होंने पूर्ण-

तल्लीनता के साथ वर्णन किया है। जिस विषय का इन्होंने कथन किया है, उससे इन्हें पूर्ण सहानुभूति थी। उसी को इन्होंने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना रक्खा था। जो कुछ ये कहते थे, वही इनके चित्त में था। इसी कारण से इनकी रचना सच्ची बनती थी। महात्मा हितहरिवंश ने भी इसी प्रकार की चमकती हुई रचना की है, किन्तु वह मात्रा में थोड़ी है। महात्मा नन्ददास, मीराबाई ग्रैार हरिदास भी उत्कृष्ट भक्त कवि थे।

महात्मा तुलसीदास की भक्ति-प्रगाढ़ता सूरदास से भी बढ़ी हुई समझ पड़ती है। इन्होंने समस्त संसार को राममय देखा ग्रैार वर्णन किया। हर पदार्थ ग्रैार हर व्यक्ति के वर्णन में इनकी अखंड भक्ति टपकती है। मिथिला, दंडक, लंका, अयोध्या आदि जिन स्थानों में इन्होंने राम का पदार्पण कहा, वहाँ उनका कथन न करके उनके सहारे से राम का ही तदनुसार कथन किया। परम प्रगाढ़ भक्ति के साथ साहित्य के अनेकानेक ग्रंगों ग्रैार विषयों को उत्तमतापूर्वक व्यक्त करने में गोस्वामी जी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनकी सब रचना प्राकृतिक, यथोचित ग्रैार अनमोल है। रहीम ने नीति बहुत उत्तम कही है ग्रैार सुन्दरदास तथा रसखान ने भक्ति के हृदय-ग्राही कथन किये हैं। घासीराम की अन्योक्ति ग्रैार नरोत्तमदास की साधारण घटनाग्रों वाले उत्कृष्ट कथन चित्त को चुरा लेते हैं। केशवदास की रचनाग्रों में आचार्य्यता ग्रैार पांडित्य, दोनों का अच्छा चमत्कार है। इसमें बहुज्ञता की मात्रा ख़ूब है। इस समय में अनेकानेक उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके कथन स्थानाभाव से नहीं हो सकते।

पूर्वालंकृत काल से अलंकृत भाषा का प्रचार बढ़ा। हिन्दी भाषा जितनी श्रुतिमधुर है उतनी शायद अन्य कोई भी न होगी। पदलालित्य ग्रैार अनुप्रास हिन्दी के प्रधान गुणों में हैं। अलंकृत काल में भाव-गाम्भीर्य्य ग्रैार भाषा-सौन्दर्य्य दोनों की हमारे यहाँ बहुत अच्छी उन्नति हुई।

पूर्वालंकृत काल में सेनापति, विहारी, भूषण, मतिराम, देव ग्रैार लाल नामक बड़े ही उत्कृष्ट कवि हुए। इन के प्रवीण हाथों में हिन्दी की भाव ग्रैार भाषा सम्बन्धी उन्नति कमाल को पहुँच गई। सेनापति ने भक्ति, श्लेष ग्रैार अनुप्रास का बहुत अच्छा चमत्कार दिखलाया। इन्होंने स्वयं बहुत ही ठीक कहा है कि इनकी रचना अमृत-धारा के समान बहती है ग्रैार अलंकारों से पूर्ण है। वे कहते हैं—

मूढ़न को अगम सुगम एक ताको जाकी
तीखन बिमल बिधि बुधि है अथाह की।
कोई है अभंग कोई पद है सभंग सोधि
देखे सब ग्रंग सम सुधा परवाह की॥
ज्ञान के निधान छन्द कोष सावधान जाकी
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै-ग्ररथ कविताई निरबाह की॥ १॥

दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है
तो कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहै।
बिनुही सिखाये सब सीखिहैं सुमति जोपै
सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है॥
दूषन को करि कोकवित्त बिनु भूषन को
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर मुनि है।
राम अरचत सेनापति चरचत दोऊ
कबित रचत याते पद चुनि चुनि है॥ २॥

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन को
बुध कवि के जो उपकंठहि बसति है।
जो पै पद मन को हरष उपजावत हैं
तजै को कुनर जौन छन्द सरसति है॥
ग्रच्छर हैं बिसद करत ऊखै आपुस मैं
जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है।
मानो छबिता की उदवति सबिता की
सेनापति कबिता की कबिताई बिलसति है॥३॥

जो प्रशंसा सेनापति ने अपने छन्दों की लिखी है वही वास्तव में हिन्दी कविता की है। हमारे यहाँ का

साहित्य वास्तव में इन्हीं गुणों से युक्त है। उदाहरण के लिये सेनापति के चार छन्द यहाँ लिखे जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु।

ब्रष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि जग झुरत झुरनि सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत
धमका बिषम जो न पात खरकत है।
मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कोनो
घरी एक बैठि कहूँ छाँहैं बितवत है॥ १॥

इस में कवि ने शब्दों ही द्वारा जेठ बैसाख की उष्णता का पूरा कथन कर दिया है।

वर्षा।

सेनापति उनये नये जलद सावन के
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहूँ भाँति
आने हैं पहार मानो काजर के ढोय कै॥
घन सों गगन छप्यो तिमिर सघन भयो
जान्यो न परत मानो गयो रबि खोय कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम जानि
मेरे जान याही ते रहत हरि सोय कै॥ २॥

निवृत्ति मार्ग।

महा मोह कन्दनि मैं जकत जकन्दनि मैं
दिन दुख दन्दनि मैं जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै॥
आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं
डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै।
हरिजनपुंजनि मैं बृन्दाबन कुंजनि मैं
बैठि रहौं कहूँ तरवर तर जाय कै॥ ३॥

केतौ करौ कोय पैये करम लिखोय ताते
दूसरी न होय मन सोय ठहराइये।
आधी ते सरस बीति गई है बरस अब
दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये॥
चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥ ४॥

जान पड़ता है कि ये महाशय किसी मुसलमान या सरकार के नौकर थे, सो कमलेक्षण विष्णु को छोड़ कर म्लेक्षों के सेवक बनना बुरा कह गये हैं।

विहारी ने दोहों में बड़े ही बारीक विचार लिखे हैं और भूषण ने जातिप्रेम और जातीयता का चित्र खड़ा कर दिया है। साथही साथ आपने वीरकाव्य भी अद्वितीय किया। मतिराम की भाषा-मनोहरता और भावपूर्णता एवं सबलता बहुत ही सराहनीय है। देव कवि की भाषा बहुत ही अलंकृत और भाव बड़े ही ऊँचे हैं। इनका सामना सूर और तुलसी को छोड़ कर भाषा में दूसरा नहीं कर सकता। ये तीन कवि ऐसे हैं जो कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर, होमर, वरजिल आदि का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। हमारे त्रिदेव की भाँति ये तीनों कवि हिन्दीसाहित्य में हैं। लाल ने केवल दोहा चौपाइयों में बीरकाव्य बहुत उत्कृष्ट किया है, जो देखते ही बन आता है। इस पूर्वालंकृत काल में अनेकानेक परमोत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके नाम तक लिखने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। उत्तरालंकृत काल में दास, भूप गुरुदत्त सिंह, रघुनाथ, सूदन, बोधा, गोकुलनाथ, रामचन्द्र, बेनी प्रवीन, प्रताप, पद्माकर आदि बड़े बड़े भारी और सबल कवि हुए। इन्होंने भाँति भाँति के ग्रन्थों से हिन्दी-साहित्य भंडार को पूर्णता दी। इस समय भाषारमणीयता की ओर और भी अधिक ध्यान रहा।

परिवर्त्तन काल में कोई भी बहुत बड़ा कवि नहीं हुआ, किन्तु रचनाशैली में समयानुसार परिवर्त्तन हुआ। प्राचीन समय में आनन्दप्रदान तथा

शिक्षा के लिये कविता होती थी, किन्तु लोकोपकार की ओर हमारे कवियों का ध्यान विशेषता से नहीं गया। परिवर्त्तन काल में इस देश में अँगरेज़ी राज्य फैला, जिससे जीवन-होड़ (struggle for existence) की उचित परिपाटी हमारे यहाँ दृढ़ हुई और दिनों दिन होती जाती है । इस कारण लोकोपकारी विषयों से भी काव्य का सम्बन्ध हुआ और इस नये प्रकार की कविता का भी प्रचार हो चला। इसी के साथ गद्य ने भी स्वाभाविक रीति से बल पाया।

वर्त्तमान काल में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सर्वोत्कृष्ट कवि हुए। इनकी रचनाओं में प्राचीनता और नवीनत्व दोनों का मिश्रण था। इन्होंने लोकोपकारी विषयों को भी लेकर देशभक्ति का मान बढ़ाया और शृंगार, हास्य तथा वीर रसों की भी सोहावनी कविता की। इनके पीछे खड़ी बोली का अच्छा प्रचार हुआ और कविता में भी उसका मान बढ़ रहा है। इस समय हमारे यहाँ उचित शिक्षाप्रद सत्य घटना-पूर्ण उपन्यासों, सामाजिक सुधार और देशभक्तिपूर्ण उपदेशप्रद नाटकों तथा ऐतिहासिक विषयों से पूर्ण महाकाव्यों की पद्य में आवश्यकता है। अब तक केवल हमें ३८०० हिन्दी-कवियों का पता लग चुका है। जिनका वर्णन हमने अपने हिन्दी काव्य के इतिहास-ग्रन्थ में किया है। हिन्दी में सभी विषयों पर हज़ारों ग्रन्थ प्रस्तुत हैं, किन्तु उनमें से बहुत ही अधिक अप्रकाशित हैं।

सारांश यह कि, हिन्दी एक प्राचीन भाषा है, इसका फैलाव भारत की सभी भाषाओं से अधिक है, यह राष्ट्र भाषा होने के योग्य है। इसकी वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है। इसका साहित्य भाषा, भाव और ग्रन्थ-बाहुल्य में अद्वितीय है और सैकड़ों प्रकार के ग्रन्थ इसमें भरे पड़े हैं। इसकी काव्यरीति बड़ी ही पुष्ट और सुवर्णित है। भाषा-माधुर्य्य इसका बहुत बड़ा गुण है। यह सब प्रकार के सौन्दर्य्य से पूर्ण है, सरकारी राज्य के आरम्भ से इसमें लोकोपकारी विषय भी आ रहे हैं। बहुत बड़े कवियों का इसमें अच्छा बाहुल्य है और यदि यह एम० ए० तक पढ़ाई जाय, तो भी दस बीस वर्षों के लिये पाठ्य ग्रन्थ नये नये तो हम ही बतला सकते हैं।

यह एक ऐसा भारी विषय है कि इस पर कोई चाहे जितना लिखता हुआ चला जाय। इसमें उदाहरण-बाहुल्य से लेख की चमत्कार वृद्धि होती, किन्तु समयाभाव से हमने उदाहरण न देकर और कवियों के विषय में प्रायः कुछ भी न कह कर यहाँ हिन्दी के महत्व का दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। यदि उदाहरण देकर उसके गुण दिखलाये जांय तो एक एक छन्द पर कई कई पृष्ठ लिखने पड़ें। ऐसे दो चार उदाहरण हमने मिश्रबन्धुविनोद की भूमिका में दिखलाए हैं, और यदि अवकाश मिला तो किसी टीकावाले ग्रन्थ में और लिखेंगे। इस स्थान पर इतना ही कह देना हम यथेष्ट समझते हैं कि जिन्हें उत्कृष्ट काव्य के कुछ उदाहरण देखने हों, वे महाशय हिन्दी नवरत्न के पृष्ठ नं० २६, ४७, ५१, ६१, ६५। (तुलसी) (सूर) १५९, (देव) १७६, १८५, २०५, (विहारी) २२८, २२९, २३२, २३३, २३६ (गँवारी), २३७, २४१, (भूषण) २६३, २६४, २६५, (केशव) २८०, (मतिराम) ३०९, ३११, (चन्द) ३४२ से, हरिश्चन्द्र ३७८ से ४ पृष्ठ का अवलोकन करें। *

—:o:—

राव मालदेव और सती उमादेवड़ी।

(लेखक—श्रीयुत साँवलजी नागर।)

किसी देश की अवस्था, देश की रीति नीति, देश के सन्तानों की कर्त्तव्यपरायणता इत्यादि बातें इतिहास के द्वारा जानी जाती हैं। जितना ही जो देश प्राचीन होगा, उसका इतिहास भी उतना ही प्राचीन होगा। जितना ही जो देश

* यह लेख लखनऊ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर हिन्दी साहित्य समिति में गत फर्वरी मास में पढ़ा गया था।

धनाढ्य, उपजाऊ, ग्रैार उत्तम होगा, उस देश का इतिहास भी उतना ही उत्तम, शिक्षादायक ग्रैार विशेष-घटनासूचक होगा। यही हाल हमारे भारतवर्ष के इतिहास का भी है। संसार के इतर देशों से भारतवर्ष प्राचीन है; धनाढ्य है; उपजाऊ है; उत्तम है ग्रैार सबसे विशेष शिक्षादायक भी है। यही कारण है कि भारतवर्ष का इतिहास इतना बड़ा है कि एक प्रकार से उसे संसार का इतिहास कहना चाहिए। रामायण, ग्रैार महाभारत जिसे सभ्यताभिमानी अँगरेज़ लोग तक ग्रादर की दृष्टि से देखते हैं, जिसकी सत्‌शिक्षा ग्रहण करने के लिए बड़े बड़े विद्वान्, जो कि भारतवासियों को ग्रसभ्य समझते हैं, उत्सुक हो रहे हैं; वह रामायण ग्रैार महाभारत ग्रन्थ भारतमाता के दो चार सपूत राम, युधिष्ठिर, दुर्योधनादिकों की जीवनसम्बन्धी घटनाग्रों का समूह ही है। जिस भारत के एक बालक रामचन्द्र जी की जीवनसम्बन्धी घटनाग्रों को लिखने के लिए महात्मा बाल्मीकि को रामायण सरीखा बृहत् ग्रन्थ लिखना पड़ा; पाण्डवों का चरित्र लिखने के लिए वेदव्यास जी को महाभारत लिखना पड़ा, पृथ्वीराज का चरित्र लिखने में महाकवि चन्द को इतना बड़ा रासो लिखना पड़ा, उस भारतवर्ष का ग्राज तक का इतिहास कितना बड़ा होगा यह समझना भी बहुत कठिन है। प्रेस नहीं था, ग्रन्थ हस्तलिखित होते थे। तिस पर वे इतने बढ़ गए थे कि ग्रसभ्य यवनों को उन्हें देखने ही से व्याकुलता प्राप्त होने लगी ग्रैार ग्रन्त में ये ग्रन्थ हम्मामख़ाने में लकड़ी ग्रैार कोयलों की जगह जलाये जाने लगे। यहाँ तक हुग्रा कि ये ग्रन्थ फाड़ डाले गए, इनकी गोलियाँ बना बना कर मछलियों को खिला दी गईं ग्रैार ये जला दिए गए, सब सब नैाबत हुई, परन्तु भारतवर्ष के सपूतों का चरित्र नष्ट न हो सका। ग्राज तक जितने समाचार-पत्र ग्रैार मासिक-पत्र इत्यादि निकले हैं, निकलते हैं ग्रैार निकल रहे हैं उन सब में इस भारतवर्ष के इतिहास का ग्रंश ग्रवश्य ही होता है। वर्त्तमान समय में जितनी ऐतिहासिक पुस्तकें प्राप्त होती हैं वे विशेषतः विदेशीय विद्वानों की कृपा से लिखी गई हैं। ये लोग हमारी भाषा ग्रादि से भी पूर्णरूप से परिचित नहीं हैं, तब इनकी बनाई पुस्तकें कहाँ तक पूर्ण होंगी यह पाठक गण विचार लें। यही कारण है कि हर एक मासिक-पत्र इन इतिहासों की पूर्ति करने का उद्योग कर रहा है। यह घटना जो ग्राज हिन्दीपाठकों के चित्तविनोदार्थ यहाँ लिखी जाती है, बहुत संक्षेप में गुजराती भाषा के ६० वर्ष के पुराने मासिकपत्र "बुद्धिप्रकाश" में ग्रभी हाल में निकली है।

राव मालदेव जोधपुर का राजा था। टाड राजस्थान में लिखा है कि "मालदेव संवत् १५८८ (सन् १५३१ ई०) में जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। मारवाड़ के बड़े बड़े राजाग्रों के समान मालदेव भी मारवाड़ के इतिहास में एक महत् चरित्र स्थापित कर गया है। उसके राज्यकाल में मारवाड़ की जैसी उन्नति हुई थी, यदि उसमें कुछ भी चेष्टा की जाती तो वह देश रजवाड़ों में सब देशों का सिरमैार गिना जाता। परन्तु राव मालदेव ने ग्रपने यत्न में न्यूनता न की। जिस स्थान से दिल्ली ग्रैार मारवाड़ की सीमा विभक्त है उस स्थान पर कई एक क़िले बने थे, वे क़िले दिल्ली के राजाग्रों के ग्रधीन थे। उस समय ग्रवसर पाकर मालदेव ने उन सब क़िलों को ग्रपने वश में कर लिया। उसका गैारव दिन दिन बढ़ने लगा। उसके गैारव-वृद्धि के मार्ग में उस समय एक भी काँटा वर्त्तमान न था। वीरकेसरी राणा साँगा के मरने पर मेवाड़-राज्य में जो घोर उलट पलट ग्रैार विग्रह उपस्थित हुग्रा, उसमें सभी मुग़ल, पठान ग्रादि शक्तिमान् मुसलमान लिप्त थे। उस समय मारवाड़ की ग्रोर किसी की भी दृष्टि न पड़ी। ग्रतएव राजा मालदेव ने ग्रप्रतिहत प्रभाव से ग्रपनी ग्रसीम प्रभुता प्रगट की थी। उसने ऐसा सुग्रवसर पा ग्रपने राज्य के बढ़ाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की, इस कारण जो शत्रु मित्र उसकी उन्नति के मार्ग में कंटक-स्वरूप खड़े हुए थे, उन्हीं को ग्रपनी

तलवार से काट उसने उनके राज्य पर अपना अधिकार किया। धीरे धीरे वह मारवाड़ का अति श्रेष्ठ राजा हो गया। इतिहासलेखक फ़रिश्ता ने उसे इसकी अपेक्षा और भी उच्च सम्मान दिया है। वह लिखता है कि "मालदेव ही उस समय में हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध राजाओं में गिना जाता था"।

कहते हैं कि इस वीरपुङ्गव राव मालदेव को बहुत बड़ी अवस्था तक दाढ़ी या मोंछ नहीं निकली थी। इस कारण अन्यान्य राजा लोग इसे अपनी बेटियाँ न देते थे। इसने अपने विवाह के लिये बड़े बड़े प्रयत्न किए, परन्तु कोई क्षत्रिय अपनी कन्या का विवाह करने पर राज़ी न हुआ। जेसलमेर के भट्टी राजा की एक परम सुन्दरी कन्या थी। मालदेव ने इसके लिये बड़ा ही प्रयत्न किया, परन्तु वह राज़ी न हुआ। इससे मालदेव बड़ा ही दुःखित हो गया। उसने सोचा कि मेरी यह विशाल सम्पत्ति, यह क्षत्रियत्त्व, यह देश-सेवा, यह यवन-विजय किस काम आवेगा। पुत्र के बिना यह सब व्यर्थ है। पुत्र के बिना इस देश के सम्बन्धियों की कौन कहे; पितृगण भी मुझे निपुत्री जान घृणा की दृष्टि से देखेंगे। सोचते सोचते उसने यह निश्चय किया कि चल कर हिमाचल पर्वत पर तपस्या करनी चाहिये! यदि महादेव प्रसन्न हुए तो ठीक ही है, नहीं तो जीवित रहकर शत्रुओं को कष्ट देने की अपेक्षा यमराज की सेवा स्वीकार करना सहस्र गुण श्रेय है। यह सोचकर वह अपना राज्य-भार मंत्री को सौंप हिमाचल पर्वत पर तपस्या करने के लिये चला गया! उसकी दृढ़ भक्ति से महादेव प्रसन्न हुए और उसे मनोवाञ्छित फल (दाढ़ी, मोंछ) की प्राप्ति भी हुई। प्रसन्नतापूर्वक वह जोधपुर लौटा, और एक सेना साथ ले जेसलमेर के भट्टी राजा के राज्य पर, जिसने बहुत समझाने, मनाने, फुसलाने और धमकाने पर भी अपनी कन्या का विवाह राव मालदेव के साथ सम्पन्न करना अस्वीकार किया था, चढ़ाई की। जब भट्टी राजा ने देखा कि मालदेव सरीखे प्रतापी वीरपुङ्गव को जीतना कठिन है तो उसने माफ़ी माँगी और अपनी परम रूपवती कन्या उमादेवड़ी का विवाह राव मालदेव के साथ कर दिया।

विवाह की रात्रि को राव मालदेव एक उत्तम रंग महल में ठहराए गए। इसी दिन महाराणी उमादेवड़ी भी इस रंग महल में शयन करने वाली थीं। परन्तु पति की सेवा में जाने के पूर्व उमादेवी को अपने सम्बन्धियों से भेंट करना और अपना भली भांति श्रृङ्गार करना परमावश्यक था। रात पड़ते ही मालदेव ने शराब पी ली और उमादेवी को बुलाने के लिये अपना सहचर भेजा! उमादेवी ने कहलाया कि "सम्बन्धियों से भेंट कर मैं थोड़ी देर में आती हूँ।" परन्तु राव तो नशे की तरंग में था। उसे उस समय रीति नीति भले बुरे का ख़याल कहाँ था। थोड़ी ही देर में घबड़ाकर उसने दूसरी बेर आदमी भेजा। परन्तु उमा को देर थी। इससे राव मालदेव ने पुनः बुलावा भेजा। उमादेवी ने सोचा कि बार बार नौकरों के द्वारा कहलाना ठीक नहीं, क्योंकि महाराज रुष्ट होगें। अतएव उसने इस बार अपनी ख़ास दासी से कहलाना निश्चय किया। इसकी एक स्वरूपवान् दासी थी जिसका नाम ब्रह्मा था। महारानी ने ब्रह्मा को कहा कि "रावजी से कहदे कि १० मिनट क्षमा करें, मैं आभूषण पहिन अभी आती हूँ।" ब्रह्मा बहुत रूपवती थी। वह जानती थी कि राव मालदेव इस समय नशे की तार में है, अतः इस समय जाना उचित नहीं है। इससे उसने महारानी से बहुत निवेदन किया कि इस समय न भेजें। परन्तु महारानी ने एक न मानी। ब्रह्मा विवश हो गई। उमादेवी का विवाह था। ब्रह्मा उसकी प्रधान सेविका थी, इससे ब्रह्मा ने भी उस दिन अपना श्रृङ्गार किया था। ज्योंही ब्रह्मा ने रंगमहल में पैर रक्खा, मदान्ध मालदेव उस पर झपट पड़ा। उसने यह न सोचा कि यह दासी है या महारानी। थोड़ी देर में महारानी भी आ पहुँची। अपने पति को दासी के पास देखकर महारानी के दुःख और क्रोध का ठिकाना न रहा। उनके

हाथ से मद्यपात्र* नीचे गिर गया। यह देख ब्रह्मा बड़ी भयभीत हुई और पलंग से उतर खिड़की के रास्ते बाहर कूद गई। बाहर की ओर मालदेव का सरदार बाघोजी राठोर पहरा दे रहा था। उसने ब्रह्मा को गिरते देखा और अपने हाथ पर रोक लिया। सरदार ने जाना कि महारानी होंगी। परन्तु ब्रह्मा ने आद्योपान्त सब हाल उसे कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि यदि यहाँ से तू भाग न जायगा तो तेरा बचना कठिन हो जायगा। बाघोजी बेतवा नदी के समीप कोटडा नामक नगर का सरदार था। ब्रह्मा के स्वरूप पर मोहित हो उसे साथ लेकर उसने कोटडा की ओर भागने का निश्चय किया। उसने ब्रह्मा को अपने घोड़े पर बिठा लिया और कोटडा की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में जितने चारण, भाट आदि मिलते थे उन्हें ब्रह्मा अपने आभूषण देती जाती थी। इससे किसी ने भी यह न पूछा कि "तुम कौन हो"। कोटडा पहुँच कर बाघोजी ने ब्रह्मा को अपनी पटरानी बनाया। धीरे धीरे यह हाल अन्यान्य सर्दारों को विदित हुआ। जब भाटों तथा चारणों को यह विदित हो गया कि ब्रह्मा एक दासी थी, तब उन्होंने उसके हाथ से दक्षिणा लेना बन्द कर दिया। परन्तु राठोर वीर बाघोजी और ब्रह्मा ने यह एक व्रत लिया था कि चारणादिकों को कुछ दान देने के पश्चात् भोजन करना, इसके पूर्व नहीं। चारणादि के दान न ग्रहण करने से इनको बड़ा दुःख हुआ और ये लोग उपवास करने लगे। इनको निश्चय हो गया कि उपवास करते करते हमारी मृत्यु होगी। अतः ये लोग कोटडा नगर के एक देव-मंदिर में चले गए और वहाँ उपवास करने लगे। यहाँ इन लोगों ने २१ दिन तक उपवास किया। इनकी दृढ़ता पर महादेव जी प्रसन्न हुए और उन्होंने वरदान दिया कि "जब तक तुम लोग जीवित रहोगे, भाट चारण तुम्हारी दक्षिणा प्रसन्नता से ग्रहण करेंगे। तुम जितना चाहोगे, दे सकोगे और जब तुम्हें कोई संकट आ पड़ेगा, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।" महादेव अन्तर्द्धान हो गए। बाघोजी पत्नी सहित कोटड़ा राज-भवन को लौटे। यहाँ पहुँच उन्होंने कई सेर सोना अपने एक कवि को दान दिया। इनके इस दातव्य का समाचार सुन देश देश के ब्राह्मण दान लेने आने लगे। यह बात जोधपुर के राव मालदेव को खटकने लगी। उन्होंने अपने भाट को, जो कि सब भाटों का राजा था, बाघोजी को किसी प्रकार प्रतिज्ञा-च्युत कराने के लिए कोटड़ा भेजा। जब बाघोजी को जोधपुर के भाट के आने का हाल विदित हुआ तो वे सरहद पर भाट-राज की अगवानी करने को गए। इन्होंने भाट-राज का बहुत आदर सत्कार किया। भाट-राज ने कहा कि "रास्ते की गरमी से मैं व्याकुल हो रहा हूँ अतः मैं किसी बाग़ में ठहरना चाहता हूँ।" संयोग से कोटड़ा में कोई बाग़ ही न था। बाघोजी तो इच्छा-दान देते थे। एक यही ऐसी समस्या थी जिस की पूर्ति करना बाघोजी के लिये दुष्कर था। अस्तु, बाघोजी ने भाट से कहा कि "कुछ देर ठहरो मैं बाग़ की ताली लेकर आता हूँ"। बाघोजी महल में लौटे। उन्होंने सब हाल ब्रह्मा से कहा। ब्रह्मा ने कहा "कोई चिन्ता नहीं। भक्तिभूषण महादेव मेरी सहायता करेंगे। आप भाट को रथ पर बैठा कर आदर के साथ ले आइये, मैं बाग़ का प्रयत्न किये देती हूँ।" उसने महादेव का ध्यान किया। परमात्मा की कृपा से बाग़ तैयार हो गया। भाटराज उसी में ठहराया गया। भाट-राज समझ गया कि इन पर दैवी कृपा अवश्य है, नहीं तो ऐसा उत्तम बाग़ कैसे बन सकता

---

* उन दिनों प्रथम बार जब राजपूत-बाला अपने पति की सेवा में जाती थी तब एक रिक़ाबी में पान इलायची और मद्य-पात्र ले जाती थी। कितनी ही जातियों में बादाम, मिश्री, नारियल आदि ले जाने की रीति है।

है। उसने बाघोजी की बड़ी प्रशंसा की * और कुछ दिन वहां ठहर कर वह जोधपुर लैाटा। जब जोधपुर के मालदेव ने दैवी सहानुभूति का हाल सुना तो फिर उसे बाघोजी के छेड़ने की हिम्मत भी न हुई। इस प्रकार बाघोजी की सत्कीर्ति दिन दिन बढ़ने लगी।

इधर राव मालदेव की स्त्री उमादेवड़ी ने शराब का पात्र भूमि पर फेंक दिया और प्रतिज्ञा की कि "आज से मालदेव; जिसने परस्त्रीगमन किया है, मेरे भाई के समान है और मैं जीते जी इनके साथ पत्नीभाव से न रहूँगी"। यह निश्चय कर वह रंग-महल से राजभवन लैाट आई। राव मालदेव ने नशा उतरने पर महारानी को बहुत बहुत समझाया परन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्त में मालदेव जोधपुर लैाट गया। उमादेवी के पिता ने सोचा कि मालदेव बड़ा क्रोधी है इस लिये उन्होंने भय के मारे उमादेवड़ी को हठात् जोधपुर भेज दिया। यहाँ भी उमादेवी को अनेक प्रकार से समझाया गया, परन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ रही। अन्त में मालदेव ने अपने भाट को उमा के समझाने के लिए भेजा। भाट ने राजा से कहा कि "मैं जाता हूँ। कुछ समय बाद आप भी वहीं पधारें"। भाट उमा के भवन में गया और उसके धैर्य, रूप, गुण की प्रशंसा करने लगा। रानी प्रसन्न हुई और कुछ भेंट देने लगी। भाट ने कहा कि "आप विरक्त भाव से अपना जीवन व्यतीत करती हैं। न शृङ्गार आदि करती हैं और न उत्तम वस्त्र ही धारण करती हैं। अतः मैं आप से विरक्त आश्रम में कुछ भी नहीं ले सकता। जब आप शृङ्गार कर अच्छे वस्त्र धारण करेंगी उसी समय मैं आप से दान ले सकता हूँ।" रानी ने भाट को कुछ भेंट देना निश्चय कर लिया था, इससे उसने आभूषण, वस्त्र इत्यादि धारण किए। इतने ही में मालदेव भी आ पहुँचा। राव को देखतेही भाट-राज चले गए। राव ने स्वयं बड़ी ही विनय से उमा को समझाया, परन्तु वह न मानी। आखिर राव उमादेवड़ी पर झपटा परन्तु उमा नीचे कूद गई। संयोग से नीचे तोशक-खाने की वस्तुएँ धूप में रक्खी गईं थी। इससे रानी को आघात न पहुँचा। वह जेसलमेर चली गई और मालदेव की जीवित अवस्था तक न लैाटी।

राव मालदेव ने और भी १६ रानियों से विवाह किया था। एक समय वह बीमार पड़ा। उसे निश्चय हो गया कि मेरा अन्तिम समय निकट है। अतः उसने अपनी १६ रानियों को बुलाया और पूछा कि "मेरे साथ कौन सती होने को तैयार है?" कोई भी तैयार न हुई। सबों की बोली बन्द हो गई। यह हाल देख भाट ने कहा कि "सरकार के साथ यदि कोई सती होगी तो उमादेवड़ी ही होगी"। परन्तु मालदेव को विश्वास न हुआ। उसने कहा जिस स्त्री ने मेरी नीचता के कारण जन्म भर दुःख भोगा, वह मेरे लिये क्योंकर सती होगी"। भाट के बहुत कहने पर मालदेव ने अपने मृत्यु-काल का सन्देशा उमादेवड़ी को कहला भेजा। उमादेवड़ी सुनते ही सती होने के लिये तैयार हो गई। यह देख उसके घर की स्त्रियों ने उसे कितना ही समझाया कि "तुम ने विवाह का कोई सुख नहीं पाया, फिर तुम क्यों सती होती हो"। यह सुन उमा ने कहा—"जिस मान के लिये हम्मीर रणथंभोर में मारा गया; जिस मान के लिये वीर पातल पावागढ़ के मैदान में लड़ मरा; जिस मान की रक्षा के लिये चंद्रराव नाघोर में; कहान्डदे झालोर में; दुदा जेसलमेर के मैदान में

---

* उसने बाघोजी की प्रशंसा में ये दोहे कहे थे—

कोटां सरे काटडो, गढ़ां जेसलमेर—
राणीयो सरेभरमदे, कुंवरां बाघ नरेश ॥ १ ॥
कीरतरो जामों बन्यो, माथो जसरो मोड—
गोठ करी घोड़ा दिये, ए बाघो राठोड ॥ २ ॥

अर्थ—क़िलों में सबसे बड़ा क़िला कोटड़ा का है, गढ़ में बड़ा जेसलमेर है, रानियों में सबसे श्रेष्ठ भ्रह्मा है और राजाओं में बाघोजी श्रेष्ठ हैं। बाघोजी ने कीर्त का जामा तथा सुयश का मुकुट धारण किया है। घोड़ा, हाथी दान करता है ऐसा दानी राठोर-नरेश बाघोजी है। भाट का इतना ही कहना बाघोजी के लिये बहुत था, क्योंकि भाट लोग गुरू थे। इनका वचन हर एक राजपूत के लिये मान्य होता था।

मारा गया, उसी मानरक्षण के लिये, अपने पिता माता की कीर्ति बढ़ाने के लिये, अपनी ज्ञाति की रक्षा और सन्मान के लिये हम सब रानियों को भी सती होना चाहिए *। यह कह कर उमादेवड़ी जी जोधपुर गई और अपने मानसिक पति मालदेव के शव के साथ सती हो गई। मालदेव अपने समय के राजपूतों में से एक साहसी और प्रचण्ड पराक्रमी राजा था। यदि वह कुछ दिन और भी जीवित रह कर यौवन का प्रचण्ड पराक्रम स्थिर रख सकता, तो वह वीरचूड़ामणि महाराणा प्रतापसिंह के साथ उदय होते हुए मुग़लपराक्रम के विरोध से राजपूत जाति की स्वाधीनता और गौरवगरिमा को अटल देख सकता। किन्तु मारवाड़ का अत्यन्त ही दुर्भाग्य था, इसी से वीर-कुल-तिलक राणा प्रताप से मित्रता होने के पहले ही वह राठोरवीर मालदेव इस असार संसार से चल बसा।

—:o:—

विवाह का इतिहास

(लेखक—बाबू जगन्मोहन वर्म्मा।)

(पूर्वप्रकाशित से आगे।)

धीरे धीरे सभ्यता बढ़ती गई और लोगों की स्त्री पुत्र में ममता अधिक होती गई। पर स्त्रियाँ स्वतंत्र बनी रहीं और एक के अधिकार में रहते हुए उनको पूर्ण अधिकार था कि जब चाहें जिससे संभोग करें। वे एक पति के होते हुए अन्य पुरुषों की कामना करती थीं और उस समय उनका यह आचरण व्यभिचार नहीं माना जाता था। महाभारत के देखने से मालूम होता है कि इस प्रथा को उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने उठा दिया।

वभूवोद्दालकोनाम महर्षिरिति नः श्रुतम्।
श्वेतकेतुरितिख्यातः पुत्रस्तस्याभवन्मुनिः॥
मर्य्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना।
कोपात्कमलपत्राक्षि यदर्थं तन्निबोधसे॥
श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः।
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत्॥
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः।
मातरं तां तथा दृष्ट्वा श्वेकेतुमुवाचह॥
मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः।
अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामंगना भुवि॥
यथा गावस्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजा।
ऋषिपुत्रोऽथ तं धर्मं श्वेतकेतुर्न चक्षमे॥
चकार चैव मर्य्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि।
मानुषेषु महाभागे नत्वेवान्येषु जन्तुषु॥
तदा प्रभृति मर्य्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम्।
व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्य्यामद्यप्रभृति पातकम्॥
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम्।
भार्य्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम्॥
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि।
पत्यानि भुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च॥
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदेवहि।
इति तेन पुरा भीरु मर्य्यादा स्थापिता बलात्॥

(आदि पर्व १२२ अध्याय)

सुनते हैं कि उद्दालक नाम के कोई ऋषि थे। इन उद्दालक जी के श्वेतकेतु नामक महर्षि उत्पन्न हुए इन्हीं श्वेतकेतु जी ने कोप करके (नहीं उस समय की प्रथा को असभ्य और दूषित समझ) यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री पति के होते हुए उसकी आज्ञा के विरुद्ध किसी अन्य पुरुष से संभोग न करे। कहते हैं कि एक समय श्वेतकेतु के पिता उद्दालक जी के सामने एक ब्राह्मण आया और उसने उनकी माता

---

* जण लाज हमीर जुजे मुओ रणथंभर।
जण लाज पातल मुओ पावे गढ़ अंतर॥
जण लाज चंद्रराव मुओ नाघोर त्तणे सल।
कानडदे झालोर मुओ दुदो जेसलमेर॥
वडगरां लाज वधारवां कल उजल सम वा करण।
सोय लाज काज उमासनी मडची सऊ कोई मरण॥

का हाथ पकड़ लिया और यह कह कर चलता हुआ कि हम दोनों जाते हैं। श्वेतकेतु से यह असभ्य व्यवहार देख कर रहा न गया और क्रोध के मारे उनकी आँखें लाल हो गईं। उनको कोप करते देख उनकी माता बोली, बेटा क्रोध मत करो। यह सनातन (नित्य नहीं प्राचीन) धर्म है। संसार में स्त्रियाँ सब वर्णों की अनावृत हैं अर्थात् वे स्वतंत्र हैं और जैसे गाय आदि पशु में व्यवहार है उसी तरह अपने वर्ण के साथ स्त्रियों को रमण करने का अधिकार है। पर ऋषि-पुत्र श्वेतकेतु को वह प्राचीन सनातन-धर्म अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उस समय से मनुष्यों के लिए यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री पति की आज्ञा के प्रतिकूल किसी अन्य के साथ संभोग न करे। उसी समय से पति की आज्ञा के विरुद्ध अन्य पुरुष से संभोग करना पतिव्रता स्त्रियों के लिए भ्रूणहत्या के समान पातक समझा जाने लगा है। कुन्ती से पांडु कहते हैं कि हे कुन्ती! यदि कोई स्त्री पति से आज्ञा पाकर पुत्र के लिए नियोग नहीं करती तो उसे भी भ्रूणहत्या के समान पातक लगता है। यह मर्य्यादा उसी धर्म-भीरु ऋषि ने स्थापित की है कि स्त्री पति की अवज्ञा न करे।

उस समय से स्त्रियाँ पति की आज्ञा पालन करने को बाधित हुईं। पर फिर भी महर्षि दीर्घतमा के समय तक पति की अयोग्यता की अवस्था में स्त्रियाँ उसके जीते जी दूसरा पति कर लेती थीं। महर्षि दीर्घतमा अंधे थे, अतः वे अपने बालबच्चों का भरण पोषण नहीं कर सकते थे। एक बार उनकी पत्नी ने जब उनकी अवज्ञा की तो उन्होंने यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री चाहे उसका पति कितना ही अयोग्य क्यों न हो उसे छोड़ न सके। उनके विषय में महाभारत में लिखा है कि एक समय दीर्घतमा जी ने अपनी स्त्री से कहा कि तू क्यों मुझसे द्वेष रखती है? पत्नी ने कहा कि पति को भरण करने ही से भर्त्ता कहते हैं। आप अंधे हैं, मैं परिश्रम करके आपका और आप के लड़कों का पालन करती हूँ। ऋषि ने कहा-मुझे राजा के यहाँ ले चलो तो मैं धन ला देता हूँ। पर स्त्री ने कहा कि मुझे आप के धन की आवश्यकता नहीं। उसके इस वाक्य पर ऋषि ने क्रोध कर के कहा—

> अद्य प्रभृति मर्य्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता।
> एक एव पतिर्नार्य्या यावज्जीवं परायणम्॥
> मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम्।
> अभिगम्य परे नारी पतिष्यति न संशयः॥
> अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम्।
> यद्यस्तिचेद्धनं सर्वं वृथाभोगा भवंतु ताः॥
> अकीर्त्तिः परिवादश्च नित्यं तासां भवन्तु वै।

आज से मैं यह मर्य्यादा करता हूँ कि यावज्जीवन स्त्रियाँ पति के आश्रित रहें। पति के जीवन-काल में वा उसके मरने पर ये कभी दूसरे पुरुष का आश्रय न लें और यदि आश्रय लें तो वे पतित हो जावें और आज से पतिहीन स्त्रियों के लिए यह घोर पातक होगा और धन होने पर भी उनको वे भोग न सकेंगी और यदि भोगेंगी तो सदा उनकी अपकीर्त्ति और निंदा होगी।

धीरे धीरे स्त्रियों की स्वतंत्रता जाती रही और वे पशु अन्न धन आदि के समान पुरुषों के उपभोग की सामग्री की तरह मानी जाने लगीं, यहाँ तक कि लोग उन्हें पति के मरने पर जिस तरह उसके अन्य आमोद-प्रमोद की चीज़ों को शव के साथ इस उद्देश से जलाते थे कि वे उन्हें स्वर्ग में वा दूसरे लोक में मिलेंगी उसकी पत्नियों को भी उनके साथ जला देते थे। यही पीछे बढ़ कर सती की प्रथा की प्रकृति हुई। उस समय आर्य्य-जाति बड़ी व्यसनी हो गई थी। एक एक पुरुष के सैकड़ों स्त्रियाँ होती थीं। स्वयं ऋषियों की भी जो तपोधन कहलाते थे अनेक स्त्रियाँ होने का पता चलता है। याज्ञवल्क्यजी सरीखे ब्रह्मवादी की भी दो स्त्रियाँ मैत्रेयी और गार्गी थीं। कहाँ तक कहें, आर्य्य-जाति अनार्यों की स्त्रियों पर गीध की नाईं टूटती थी और यज्ञों की दीक्षा के समय भी लोग अनार्य्य स्त्रियों से गमन करते थे। इसीलिए ब्राह्मण ग्रंथों में 'न रामामुपेयात्' अर्थात् यज्ञदीक्षा के समय रामा अर्थात् शूद्रा से गमन न

करें—इत्यादि प्रकार के नियम बाँधने पड़े। इसी दुर्बलता के समय जब वंशोच्छेद होने लगा ते राजा वेणु ने नियोग की प्रथा के बलात् चलाया। मनुजी ने इस प्रथा के पशु-धर्म कहके अपनी स्मृति में इसकी निन्दा की है—

> अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
> मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेणे राज्यं प्रशासति॥
> स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा।
> वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः॥

राजर्षि वेणु के समय में विद्वान् द्विजों ने मनुष्यों के लिए इस पशु-धर्म का उपदेश किया था। राजर्षि प्रवर वेणु समस्त भूमण्डलका राजा था। उसी कामी ने वर्णों का घाल-मेल किया।

नियोग में उत्तम संतान उत्पन्न करने के लिए सुन्दर बलवान् ब्रह्मचर्य्यपूर्ण पुरुष के ढूंढ़ कर उससे नियोग कराते थे। यह प्रथा आर्य्यों ने स्वयं निकाली वा अन्य असुर आदि जातियों से ली इसका ठीक पता नहीं लगता।

नियोग चला, अच्छे संतान उत्पन्न किये जाने लगे, पर स्त्रियों के उनके पतियों के साथ जलाने की प्रथा ने सती का रूप धारण कर लिया। स्त्रियों के अपने पतियों से परलोक में मिलने की चाट बढ़ गई और वे सुख से अपने इच्छापूर्वक अपने पतियों के साथ सती होना अपना धर्म समझने लगीं*। उस अवस्था में कितने लोग उन्हें फुसलाया भी करते थे और यह समझाते थे कि क्यों तू इस मृतक पति के साथ पड़ी है और जल कर अपना प्राण देती है उठ चल हमारे साथ संसार में मैाज उड़ा। स्वयं ऋग्वेद के इस मन्त्र से इसका पता चलता है:—

> उदीष्वनार्य्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
> हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंवभूथ॥ सू० १०।१८

हे स्त्री, इस मरे हुए प्राणी के पास से उठ और जीवलोक अर्थात् जीते जागते लोगों का साथ पकड़। तेरा और इस हाथ पकड़ने वाले मृतपति का जनित्व संतान उत्पन्न करने का काम अब समाप्त हो गया।

यह सब सुधार हुआ पर उस समय तक विवाह दे ही प्रकार से होते रहे, एक ते छीन छान लड़ भिड़ कर वा उसकी सम्मति से कन्या के फुसला कर भगाले जाते थे अथवा यज्ञों के समय यजमान अपनी कन्याओं के ऋत्विजों के चाहे दक्षिणा रूप में वा धर्म समझ दे दिया करते थे। यज्ञों के समय ऋत्विजों के पूरी स्वतन्त्रता थी कि वे लोग यजमान की स्त्रियों, कन्याओं और कुटुंबियों से हँसी मज़ाक करें। बड़े बड़े यज्ञों में उनके लिए अच्छे अच्छे समाजों का प्रबंध श्रीमान् लोग करते थे। उनके खाने के लिए उत्तम उत्तम पशुओं के मांस, पीने के लिए यवसुरा सोमरसादि उपस्थित रहते थे। कितनी अप्सरायें आमंत्रित होती थीं जिनसे उन्हें हँसी दिल्लगी करने का अच्छा अवसर मिलता था। स्वयं यजमान भी अपने कुटुंबियों समेत यज्ञ के मंडप में ही रहता था। ऋत्विजों और यज्ञमंडप की रहनेवाली यजमान की संबंधी स्त्रियों में परस्पर फूहड़ हँसी मज़ाक़ का कुछ वर्णन यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र २०—३१ में आया है जिसे हम यहाँ देना उचित नहीं समझते। जिन्हें देखना हो वे वहाँ ही महीधर भाष्य वा शतपथ ब्राह्मण अध्याय १३। ५। २। में देख लेवें।

धीरे धीरे ऋत्विजों के साथ अयोग्य विवाह की प्रथा लोगों के अनुचित मालूम होने लगी। तब विवाह करने का अधिकार पिता के हाथ में दिया गया। क्योंकि यह उचित न जान पड़ा कि ऐसे उत्तरदायित्व का अधिकार उन बालिकाओं के हाथ में दिया जावे जिन्हें संसार का कुछ भी तजुर्बा नहीं होता। जरा सी नादानी के कारण उनका सारा जीवन किरकिरा हो जाता है। साधारण लोगों ने ते यह बात मानली पर बड़े बड़े लोगों में प्रायः विवाह की प्रथा वैसीही

* इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यते उत त्वामत्यप्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं च धेहि॥
अथ० १८।३।१।१

रही। केवल इतना किया गया कि पिता योग्य वरों को एक समाज में आमंत्रित करके बुलाता था और कन्या उनमें से किसी को वरण करती थी। इतना होने पर भी क्षत्रियों में प्रायः स्वयंवर के मौकों पर छीना झपटी मार पीट लड़ाई झगड़े हो ही जाते थे।

उस समय बालक बालिकाओं की अवस्था २५ और १६ से न्यून नहीं होती थी, अतः वैधव्य की बहुत कम संभावना थी। धीरे धीरे नियोग पाशव और घृणित समझा जाने लगा, सभ्यता बढ़ती गई और भुक्ता स्त्रियों को ग्रहण करना जूठी पत्तल खाना समझा जाने लगा। युवावस्था में विवाह होने के कारण बड़े बड़े घरों में कन्याओं के विवाह के पहले भी संतान हो जाया करती थी, जैसे कुन्ती से कर्ण उत्पन्न हुआ था।

धीरे धीरे समय और सभ्यता बदलती गई। स्त्रियों के ऊपर पुरुषों की कड़ी दृष्टि रहने लगी। उनकी स्वतंत्रता जाती रही और वे पुरुषों की बंदी बना दी गईं। मनु लिखते हैं—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति॥

अर्थात् पिता कौमार में, पति यौवन में और पुत्र बुढ़ापे में स्त्रियों की रक्षा करे। स्त्रियों को कभी स्वतंत्रता न होनी चाहिये।

स्त्रियों की स्वतंत्रता छीनने और पुरुषों के अधिकार बढ़ने का यह प्रभाव पड़ा कि पुरुषों में बहुविवाह की प्रथा चल पड़ी। स्त्रियाँ इस काल में पुरुषों के आमोद प्रमोद की सामग्री हो गईं और उनको उपयोग में लाने के अनेक ढंग सोचे और निकाले गये। काम शास्त्र और नायिकाभेदादि ग्रंथों की इसी प्रकार के विचारों से सृष्टि हुई। एक एक पुरुष के अनेक विवाह होने की अवस्था में भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अठगुनी कामेच्छा मानना उस समय के लोगों के हृदयंगम भावों के साक्षी हैं।

यह धींगा मुश्ती बहुत दिन न चली और थोड़े ही दिनों बाद ईसामसीह के छः सौ वर्ष पूर्व कपिलवस्तु नगर में महात्मा बुद्धदेव का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने एक बार स्त्रियों के अधिकार पर विचार किया और उन्हें संन्यास धर्म तक का अधिकारी माना। बौद्ध धर्म की उन्नति के समय में बड़ी बड़ी विदुषी स्त्रियाँ हुई हैं जिनमें गोतमी, जटिला, संघमित्रा आदि प्रसिद्ध हैं।

बौद्धधर्म के बहिष्कार के साथ ही साथ हिन्दुस्तान के पुरुषों का धावा फिर एक बार स्त्रियों पर हुआ, पर थोड़े ही दिनों बाद मुसलमानों के आक्रमण से ये लोग इतने तंग हुए कि उन्हें न केवल अपनी ही किंतु स्त्रियों तक की रक्षा के लिये प्रबंध करना पड़ा। युवा-विवाह की प्रथा बंद हुई और बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित हुई। और यह देख कर कि मुसलमान लोग विशेष कर कन्याओं ही पर आक्रमण करते हैं, क्योंकि सधवा स्त्री पर बलात्कार करना वा उसे छीनना मुसलमानी धर्म के विरुद्ध है, यह प्रबंध किया गया कि जहाँ तक हो सके कोई सयानी कन्या अविवाहिता न रहने पावे। इसके बाद पराशर स्मृति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके अनुसार आठ वर्ष से अधिक अवस्था में विवाह करना पिता माता के लिये प्रायश्चित्तार्ह ठहराया गया और सब प्रकार के विवाहों पर ब्राह्म विवाह श्रेष्ठ माना गया और विवाह की प्रथा ने वह रूप धारण किया जिसमें हम उसे आज देखते हैं।

—:o:—

वक्तृत्व-शक्ति।
और
उसकी साधना के उपाय।

—:o:—

वक्तृता से लाभ।

ईश्वर ने मनुष्य को जितनी शक्तियाँ प्रदान की हैं, वक्तृत्व-शक्ति उन सब में श्रेष्ठ है। मनुष्य जिन कर्तव्यों को पूरा करने के लिये संसार में भेजा गया है, वक्तृत्व-शक्ति से उन सब में बहुत अधिक

सहायता मिलती है। यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर पशु पक्षी भी परस्पर एक दूसरे पर अपना भाव प्रकट कर सकते हैं, तथापि उनके इस कार्य्य की गणना बातचीत करने में नहीं हो सकती और न उस प्रकार मनुष्य की आवश्यकताएँ ही पूरी हो सकती हैं; इसीलिये ईश्वर ने मनुष्य को यह सर्वोत्तम साधन प्रदान किया है।

जिस समय संसार में सभ्यता का आरम्भ हुआ, उस समय मनुष्यों ने अनुभव से जाना कि वक्तृत्व-शक्ति एक ऐसा उपयोगी साधन है कि यदि भली भाँति उसका उपयोग किया जाय तो संसार के समस्त कार्य्यों में बड़ी ही सरलता हो सकती है। उपदेशकों ने देखा कि यदि अच्छे ढंग से वक्तृता दी जाय तो श्रोताओं पर तत्काल ही उसका प्रभाव पड़ता है। राजमंत्रियों ने देखा कि अच्छी वक्तृता से शासकों पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वे उसपर पूरा ध्यान देते हैं। शिक्षकों ने देखा कि यदि अधिक परिमार्जित भाषा में कोई बात भली भाँति सिखलाई या समझाई जाय तो वह शीघ्र ही शिष्यों की समझ में आ जाती है और उसकी स्मृति भी अधिक समय तक बनी रहती है। तात्पर्य्य यह कि संसार में सब पर यह बात भली भाँति विदित और प्रमाणित हो गई कि अच्छी वक्तृता का परिणाम उत्तमतर होता है और कभी कभी उसके द्वारा ऐसे कार्य्य सम्पन्न हो जाते हैं जो साधारण युद्धों से भी सम्भावित नहीं। उस समय से विद्वानों ने बातचीत के ढंग में सुधार करना आरम्भ किया और अन्त में यह एक प्रकार की विद्या हो गई।

अन्य अनेक विद्याओं की भाँति इस विद्या में भी भारतवासी ही अग्रसर हुए थे। अधिक दूर क्यों जायँ, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति के द्वारा ही महाभारत का युद्ध कराया था। महात्मा बुद्ध ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति से ही आधे संसार को अपना अनुयायी बना लिया था। भगवान् शङ्कराचार्य्य के कामों में भी विद्या के साथ वक्तृत्व-शक्ति का बहुत कुछ अंश था। भारत के बाद यूनान और रोम वालों ने इसमें दक्षता प्राप्त की। उन लोगों में अनेक ऐसे वक्ता हुए जिन्होंने अपनी वक्तृता के बल से ही इधर की दुनिया उधर कर दी। जो काम आजकल कदाचित् विद्युत् शक्ति भी नहीं कर सकती, वह काम बड़े बड़े वक्ताओं की केवल ज़बान हिलने से हो जाते थे।

सभ्य-संसार में वक्तृत्व-शक्ति का बड़ा आदर है। एक अच्छे वक्ता में किसी अच्छे कवि से अधिक शक्ति होती है। जब वह खड़ा होता है तो बड़े बड़े वीरों के समूह को बात की बात में रुला सकता है और उसी प्रकार उन्हें हँसा भी सकता है। उसका एक एक शब्द मनुष्य के हृदय पर चिंगारी का काम कर सकता है। जो लोग संसार का इतिहास जानते हैं उन्हें कई ऐसी घटनाएँ मालूम होंगी कि जिनमें वीर सेनापतियों ने अपनी ओजस्विनी वक्तृता से निराश सिपाहियों को पुनः उत्तेजित और उत्साहित करके बड़े बड़े शत्रुओं पर विजय पाई है। फ़्रांस के सम्राट् प्रसिद्ध वीर नेपोलियन से यूरोप के सभी शासक काँपते थे। उसके इस आतंक का मुख्य कारण उसका चातुर्य्य और दूसरा कारण उसका वक्तृत्व-बल था। उसने कई अवसरों पर अपनी सेनाओं को उत्तेजित करने के लिये ऐसी ऐसी बातें कही थीं जो कि आज तक बहुत कम सेनापतियों के ध्यान में आई होंगी। एक अवसर पर उसने अपनी सेना के थके हुए सिपाहियों से कहा था—"बहादुरो! गत दो सप्ताहों में तुमने छः स्थानों पर विजय प्राप्त की है, शत्रुओं से ५५ तोपें छीन ली हैं और कई क़िलों पर अपना अधिकार जमाया है। दस हज़ार से अधिक सिपाहियों को तुमने मारा और घायल किया है। बिना तोपों की सहायता के तुमने तोपें छीन ली हैं, बिना पुलों के नदियाँ पार की हैं और बिना जूतों के पैदल कूच किए हैं। ब्राण्डी दूर रही, तुम्हें पेट भर रोटी भी नहीं मिली। लेकिन इतना होने पर भी तुमने ऐसे ऐसे युद्धों में विजय पाई है कि जिसकी समता करनेवाला संसार में और कोई नहीं है। तुम अपने समस्त देश के धन्यवाद के

पात्र हो। जो लोग तुम्हारी बुरी दशा पर हँसते थे, वे तुम्हारे सामने न ठहर सके और भाग गये। जो लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे, वे अब तुम्हारी ओर से चौकन्ने हो गए हैं। लेकिन अब मैं सुनता हूँ कि तुममें से भी कुछ लोग ऐसे हैं जिनकी हिम्मत टूट गई है; पर तो भी मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता। जब तक मेरी बुद्धि ठिकाने है तब तक क्या मैं कभी यह बात मान सकता हूँ कि मेरी विजयी सेना के सिपाही हिम्मत हार रहे हैं!" इन वाक्यों ने प्रत्येक सिपाही के हृदय पर बिजली का काम किया था। राज्यच्युत होते समय नेपोलियन ने अपने सैनिकों से कहा था—"मेरे पुराने सेनापतियो और सैनिको! मैं तुम्हारे गत बीस वर्षों के कार्य्यों से बहुत ही सन्तुष्ट हूँ। मैंने तुम्हें सदैव विजय प्राप्त करते ही देखा है। इस समय यूरोप के सब राष्ट्र मिलकर मुझे राज्य से अलग होने के लिये विवश कर रहे हैं। यद्यपि तुम लोग मेरे विश्वासपात्र हो, तथापि मैं अपने प्यारे देश को विपत्ति में नहीं डालना चाहता। अब तुम्हें उचित है कि तुम लोग पहले की भाँति अपने नये अधिकारी की आज्ञा का पालन करो। अपनी जन्मभूमि के साथ कभी विश्वासघात न करना और न कभी मेरे अभाग्य की चर्चा करना। मैं तुम्हारा कुशल-समाचार सुनकर ही प्रसन्न होऊँगा। इस समय मेरे लिये मरने से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है, तथापि मेरी प्रतिष्ठा मुझे कभी आत्महत्या न करने देगी। मैं इस समय तुम सब लोगों से गले नहीं मिल सकता, इसलिये केवल तुम्हारे सेनापति से ही मिल लेता हूँ (इतना कह कर वह जनरल से गले मिला और फ़्रांस की राजपताका को चूम कर, आँखों में आँसू भरकर फिर कहने लगा) वीरो, मुझे भूल मत जाना। जाओ ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।"

नेपोलियन के इन वाक्यों ने उसके सिपाहियों पर ऐसा जादू डाला कि जब उसने पुनः यूरोप से लड़ने का विचार किया तो वे सब लोग फिर उसके झंडे के नीचे आ गए। एक बार एक मुसलमान सेनापति अफ़्रिका के किनारे पर, स्पेनवालों से लड़ने के लिये उतरा था। उतरते ही उसने अपने जहाज़ों में आग लगा दी थी और अपने सिपाहियों से कहा था—"या तो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और या यहीं मर जाओ। तुम लोग ख़ाली हाथ लौट जाने के लिये यहाँ नहीं आए हो।"

यह तो हुई योद्धाओं की बातें; अब कुछ ऐसे लोगों का हाल सुनिए जिन्होंने संसार के अन्य कामों में अपनी वक्तृत्व-शक्ति की सहायता से अनेक महत्त्व-पूर्ण परिवर्त्तन किए हैं। कुछ लोग गद्य को, पद्य के बाद दूसरा स्थान देते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि गद्य की अपेक्षा पद्य में रस कुछ अधिक होता है। लेकिन तो भी इसमें सन्देह नहीं कि संसार में गद्य से जितने काम निकलते हैं, पद्य से उतने कदापि सम्भावित नहीं। एक कवि गद्य की प्रशंसा में कहता है—"वक्तृत्व-शक्ति (गद्य) समस्त संसार की अधिष्ठात्री देवी है। संसार में आज तक जितने बड़े बड़े कार्य्य हुए हैं, उन सबमें किसी न किसी रूप में वक्तृत्व-शक्ति से अच्छी सहायता मिली है। मनुष्य में स्वदेशप्रेम का अंकुर इसी के द्वारा उत्पन्न होता है। सर्वसाधारण में आन्दोलन उत्पन्न करने का यह बहुत उत्तम साधन है। इसके द्वारा बुरे विचारों का नाश और अच्छे विचारों का संचार होता है। उसी की सहायता से भयङ्कर युद्धों का आरम्भ होता है और वही शक्ति उसका अन्त भी करती है।"

लार्ड बेकन ने अपनी "एडवांसमेण्ट आफ़ लर्निंग" (Advancement of Learning) नामक पुस्तक में लिखा है—"बुद्धिमत्ता की केवल प्रशंसा और प्रतिष्ठा ही की जाती है, लेकिन वक्तृत्व शक्ति से संसार के बड़े बड़े कार्य्य सम्पन्न होते हैं।" एक बार मैसिडोनिया के एक बादशाह ने वहाँ के एक अच्छे वक्ता को उसकी योग्यता से प्रसन्न होकर हज़ार गाँव दे दिये और साथ ही यह भी कहा कि उसकी योग्यता को देखते हुए यह पारितोषिक कुछ भी नहीं है। दुःख है कि अन्य विद्याओं के पण्डित

ग्रैार ज्ञाता ते बहुत अधिकता से होते आये हैं, लेकिन अच्छे वक्ताओं की संसार में सदा से कमी ही रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि वक्तृता या भाषण में एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जो संसार के प्रत्येक कार्य्य में बहुत बड़ा परिवर्तन कर सकती है। यूनान के प्रसिद्ध वक्ता डिमास्थनीज़ ने अपनी वक्तृत्व शक्ति के द्वारा ही वहाँ के निवासियों को अपने अत्याचारी राजा से लड़वा दिया था। स्वयं उस अत्याचारी राजा ने एक बार उसकी प्रशंसा करते हुए कहा था—"यदि मैं भी उसकी वक्तृता सुनता ते मुझे विश्वास है कि मुझे उत्तेजित करने में उसे यहाँ तक सफलता प्राप्त होती कि मैं स्वयं अपनी तलवार खींच कर अपने आप से लड़ने लग जाता।" ठीक ऐसी ही घटना हाल में एक बार इंग्लैण्ड में भी संघटित हुई थी। लार्ड वारेन हेस्टिंग्स के शासन-काल में इस देश में बहुत सी ख़राबियाँ पैदा हो गई थीं। पारलीमेण्ट के प्रसिद्ध वक्ता बर्क ने उन पर रिश्वत का अभियोग लगाया था ग्रैार अन्त में अपनी प्रभावशालिनी वक्तृता से उन्हें दोषी प्रमाणित करके छोड़ा था। लार्ड हेस्टिंग्स ने इस अभियोग का हाल लिखते हुए स्वयं कहा है—"आध घंटे तक टकटकी लगाये मैं बर्क की तरफ़ देखता रहा। प्रत्येक शब्द जो उसके मुँह से निकलता था, मेरे हृदय पर विलक्षण प्रभाव डालता था, यहाँ तक कि थोड़ी ही देर में मैं स्वयं अपने आप को दोषी समझने लगा।" प्रसिद्ध वक्ता सिसरो ने एक बार रोम के एक बादशाह के दरबार में अपनी वक्तृता के प्रभाव से एक ऐसे अभियुक्त को बिलकुल साफ़ छुड़वा दिया था जिसे बादशाह बिना सज़ा दिये कभी न छोड़ता। इसी सिसरो के विषय में लोग कहते हैं कि जब कभी वह किसी विषय पर बोलने के लिये खड़ा होता ते उसके सारे विरोधी डर कर सामने से हट जाते थे। मिस्टर माण्ट गोमरी के कथनानुसार प्रशिया के प्रसिद्ध वक्ता लूथर ने ही अपने वक्तृत्व-बल से वहाँ की पारलीमेंट न टूटने दी ग्रैार अपने देश को एक अत्याचारी राजा के अधीन होने से बचा लिया।

जो लोग अमेरिका की स्वतंत्रता ग्रैार वहाँ के प्रसिद्ध युद्ध का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम होगा कि अमेरिका को स्वतंत्र करने तथा वहाँ प्रजातंत्र स्थापित करने में जनरल वाशिंगटन ने ही सब से अधिक उद्योग किया था। यद्यपि वहाँ की सारी सेना को उसी ने अपने अधीन कर रक्खा था ग्रैार बड़े बड़े कठिन अवसरों पर अमेरिका वालों के लिये उसने अपना जीवन संकट में डाला था, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि मिस्टर पेडम नामक एक वक्ता ने जनरल वाशिंगटन की बहुत अधिक सहायता की थी। सब से पहले मिस्टर पेडम ने ही वहाँ के नेताओं के समक्ष वाशिंगटन को समस्त सेना का कमांडर-इन-चीफ़ बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया था। पर उन लोगों ने यह कह कर उस प्रस्ताव को टाल दिया कि वाशिंगटन विदेशी हैं ग्रैार यहाँ के सैनिक उनके अधीन रहना न चाहेंगे। प्रातःकाल जब यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो सारी सभा उसके विरुद्ध थी; लेकिन मिस्टर पेडम के दिन भर वक्तृता देने के बाद सारे देश को उन्होंने अपना अनुमोदक बना लिया ग्रैार जनरल वाशिंगटन अमेरिका की समस्त सेनाओं के कमांडर-इन-चीफ़ बना दिये गये। इसी सुवक्ता ने फ़्रांस सम्राट् के दरबार में जाकर अपनी बातों से उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि वह इंग्लैण्ड के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। इसी लिए लोग कहते हैं कि अमेरिका को स्वतंत्र करने में जनरल वाशिंगटन को मिस्टर पेडम ने बहुत बड़ी सहायता दी थी।

वक्ता बनने के उपाय।

यद्यपि संसार में सब प्रकार के विद्वानों की दिन पर दिन वृद्धि होती जाती है, पर तो भी अब सिसरो या डिमास्थनीज के समान वक्ता उत्पन्न नहीं होते। यूरोप ग्रैार अमेरिका आदि सभ्य देशों में अब भी अच्छे अच्छे वक्ता दिखलाई देते हैं। भारत में भी

अँगरेज़ी शिक्षा के प्रचार के साथ साथ पुनः इस विद्या का प्रचार होने लगा है। ब्राह्म-समाज के संस्थापक और प्रवर्त्तक बाबू केशवचन्द्र सेन अँगरेज़ी भाषा में बहुत अच्छा व्याख्यान देते थे, यहाँ तक कि यूरोप तथा अमेरिका के बड़े बड़े विद्वानों ने आपकी वक्तृता की प्रशंसा की थी। मिस्टर डब्ल्यू० सी० बनर्जी, मि० रामस्वामी मुडालियर तथा मिस्टर लालमोहन घोष भी अच्छे वक्ता हो गये हैं। आजकल भी श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले आदि कई अच्छे वक्ता भारत में मौजूद हैं। मिस्टर दादा भाई नौरोजी ने अपने व्याख्यानों से विलायत वालों को कई बार चकित कर दिया है। इसी प्रकार कई ऐसे भारतवासियों का नाम लिया जा सकता है जो अँगरेज़ी भाषा में बहुत अच्छी वक्तृता दे सकते हैं। जनवरी सन् १८९९ में डी० स्काट् नाम के एक विदेशी पादरी ने लाहौर के "ट्रिब्यून" में एक पत्र प्रकाशित कराया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि भारतीय कांगरेस में मैंने कई भारत-वासियों को अँगरेज़ी भाषा में ऐसी अच्छी वक्तृता देते सुना है, जैसी वक्तृता मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

दुःख है कि हमारे देश में हिन्दी भाषा में वक्तृता देनेवाले लोगों का नितान्त अभाव है। हमारे कहने का यह तात्पर्य्य नहीं है कि हिन्दी जगत् में कोई वक्ता ही नहीं है; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि आज कल के शिक्षित विद्वान् हिन्दी बोलने या लिखने में अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। तो भी अब धीरे धीरे लोगों के ये भाव दूर हो चले हैं और उनकी रुचि हिन्दी की ओर होती जा रही है। हिन्दी-जगत् में भी दो चार अच्छे वक्ता हैं पर अभी हमें बहुत से अच्छे अच्छे वक्ताओं की बड़ी आवश्यकता है। इस स्थान पर हम कुछ ऐसे उपायों का वर्णन करना चाहते हैं जिनके अवलम्बन से लोगों को इस विद्या के उपार्जन में सहायता मिले।

प्रायः हमारे देश के नवयुवकों की इच्छा हुआ करती है कि वे सर्वसाधारण में अच्छी वक्तृता देने के योग्य बन सकें। लेकिन उनके मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट लज्जा होती है। जिन लोगों को पहले पहल सर्वसाधारण में कुछ बोलने का अवसर प्राप्त होता है, वे यदि निःसंकोच भाव से कुछ कहने के लिये खड़े भी हो जायँ तो श्रोताओं का उन पर इतना आतंक पड़ता है कि वे घबरा जाते हैं और इसीलिए उनके विचार भी खंडित और क्रमविहीन हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सर्वसाधारण पर उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वक्ता का सारा परिश्रम नष्ट हो जाता है और उलटे उसे सब लोगों के सामने लज्जित होना पड़ता है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि जब लोग पहले पहल किसी सभा-समाज में वक्तृता देने के लिए खड़े होते हैं तो वे इतने लज्जित या भयभीत हो जाते हैं कि कठिनता से दो चार वाक्य बोलने के योग्य होते हैं। पहले तो वे काँपने लगते हैं और फिर घबराहट के कारण उनकी ज़बान लड़बड़ाने लगती है और अन्त में वे पसीने में तर होकर बैठ जाते हैं। उस समय उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि घबराहट में उनके मुँह से क्या क्या निकल गया। इस दोष को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि नवयुवक लोग छोटी छोटी सभाएँ बनायें और वहाँ जाकर परस्पर अपने विचार प्रकट किया करें। यदि प्रारम्भिक अवस्था में ही युवक ऐसी सभाओं में जाया करते हों तो फिर आगे चल कर वे बड़ी बड़ी सभाओं में भी बोलने के योग्य हो जाते हैं। लेकिन एक विद्वान् का कथन है कि यदि ऐसी सभाओं में केवल बालक या युवा ही सम्मिलित होंगे तो उनकी भूलों का सुधरना कठिन हो जायगा। इसलिए ऐसी सभाओं के लिए किसी योग्य सभापति की बहुत आवश्यकता हुआ करती है। जिन लोगों को बाल्यावस्था में ऐसी सभाओं में योग देने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो, वे बड़े होने पर भी उनसे लाभ नहीं उठा सकते हैं। कभी कभी इस प्रकार की घबराहट बड़े बड़े विद्वानों तक को हुआ करती है। अर्ल आफ़ डरबी वक्तृता देते समय प्रायः घबरा जाया करते थे। एक बार विला-

यत में एक लार्ड मेयर की दावत में एक विद्वान् लार्ड को कुछ बोलना पड़ा था। उस अवसर पर आध घण्टे में उन्हें दो बार सोचने के लिये हाल के बाहर जाना पड़ा था।

कुछ लोगों में यह दोष होता है कि वे एक स्थान पर तो बहुत ही बेधड़क होकर बोलते हैं, लेकिन किसी नये स्थान पर उनसे कुछ भी बोला नहीं जाता। लार्ड एलडन ने एक बार कहा था कि यद्यपि पारलीमेण्ट में मेरी वक्तृता बहुत ही अच्छी होती है लेकिन गोल्डस्मिथ के भोज के समय मेरा शरीर काँपने लगता है। मिस्टर गार्डन ने एक बार लार्ड जान रसल के बारे में कहा था कि हाउस आफ़ कामन्स में तो मैं उनसे सहम जाता हूँ, लेकिन यदि वे किसी और स्थान पर हों तो मैं उनकी ज़रा भी परवा नहीं करता। कोनल नामक एक प्रसिद्ध वक्ता जब पहले पहल पारलीमेण्ट में गया तो वह लोगों पर आक्षेप करने के सिवा और कुछ भी नहीं जानता था। लेकिन बाद में वह ऐसा योग्य वक्ता बन गया कि चाहे वह पारलीमेण्ट में विद्वानों के सामने या देहातों में अशिक्षितों के सामने अथवा न्यायालय में जजों के सामने हो, उसका भाषण सभी स्थानों पर विलक्षण प्रभाव डालता था।

जो लोग यह चाहते हों कि वे साधारण जन-समाज में बोलने योग्य एक अच्छे वक्ता बनें, उन्हें उचित है कि वे ध्यान-पूर्वक अच्छे अच्छे लेखकों की पुस्तकें पढ़ा करें। विलायती पारलीमेण्ट के मेम्बर स्वर्गीय मिस्टर जौन ब्राइट का नियम था कि सदा सोने से पहले वे प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओं, लेखकों और वक्ताओं की पुस्तकें या वक्तृताएँ अवश्य पढ़ते थे। एक विद्वान् का कथन है कि—"मनुष्य की प्रकृति चोर है।" अर्थात् वह दूसरों की अच्छी या बुरी बातों को बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेती है। इसलिये विद्वानों और योग्य आदमियों का ही सदा साथ करना चाहिये। अच्छी वक्तृता से यह तात्पर्य्य नहीं है कि दो चार अच्छे अच्छे वाक्य कण्ठ कर लिये जायँ। वक्तृता वही अच्छी होती है जिसमें उच्च विचार और ज्ञान भी सम्मिलित हो। परिमार्जित भाषा, वक्तृता का शरीर है और अच्छे विचार और विषय उसका जीवन हैं। इसलिये अध्ययन के अतिरिक्त विचार-शक्ति को भी प्रबल करना चाहिये। लोगों के केवल यह कह देने से कि—"भाषण अच्छा हुआ" यह न समझना चाहिये कि हम अच्छे वक्ता होगये। बल्कि जब लोग यह कहने लगें कि "विचार बहुत अच्छे हैं" तभी समझना चाहिये कि सफलता प्राप्त हुई। लेकिन अच्छे विचार जो कि वक्तृता के प्राण-स्वरूप हैं, केवल उत्तम साहित्य के अध्ययन करने और विद्वानों के साथ रहने से उत्पन्न होते हैं।

यदि आरम्भ में कुछ अधिक सफलता न हो तो निरुत्साह होना उचित नहीं है। ऐसे लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जन्म से ही कोई व्यक्ति किसी विषय का विद्वान् नहीं होता। कुछ लोगों की धारणा है कि डिमास्थनीज़ से बढ़ कर आज तक और कोई वक्ता नहीं हुआ और उनकी यह धारणा बहुत से अंशों में ठीक भी है। प्रारम्भिक अवस्था में डिमास्थनीज़ के भाषण में भी बहुत दोष हुआ करते थे। वक्तृता देते समय वह हकलाता था और बहुत ही भद्दे पन से अपने हाथों तथा कानों को हिलाता था। लेकिन एक उत्तम वक्ता बनने की उसकी प्रबल इच्छा थी। इसलिये उसने अपने आप को एक ऐसी कोठरी में बन्द किया जिसमें चारों ओर तेज़ छूरियाँ लगी हुई थीं। ये छूरियाँ उसने इस-लिये लगाई थीं जिसमें उसका शरीर व्यर्थ इधर उधर हिलने न पावे। उसने यह भी प्रण कर लिया था कि जब तक मुझे भली भाँति भाषण करना न आ जायगा तब तक मैं इस कोठरी से बाहर न निकलूँगा। इसीलिये उसने अपनी एक ओर की मूछें भी मुड़वा ली थीं। मुँह में कंकड़ डाल कर उसने जल्दी जल्दी बोलने का अभ्यास किया और इस प्रकार उसका हकलाना भी दूर हो गया। इतने कठिन परिश्रम और अभ्यास के बाद भी जब वह बाहर निकला तो लोग उसके भाषण पर हँसते थे। लेकिन इतना होने पर भी डिमास्थनीज़ अपने विचारों

पर दृढ़ रहा और अन्त में उसने वक्तृता देने में संसार में सब से बढ़ कर प्रसिद्धि प्राप्त की।

लेकिन उक्त उदाहरणों का यह तात्पर्य्य नहीं है कि सभी लोग चेष्टा करने पर अच्छे वक्ता हो सकते हैं। अर्ल आफ़ जस्टर ने पारलीमेंट में पहले पहल खड़े होकर कहा था—"महाशयो! मैं—मैं, खड़ा होता हूँ।" मैं—मैं—मैं अपने वक्तव्य को चार भागों में विभक्त करता हूँ।" इसके उपरान्त बहुत देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—"माई लार्डस, यदि मैं फिर कभी इस हाउस में आप लोगों के सामने कुछ बोलने के लिये खड़ा होऊँ तो मैं आपको अधिकार देता हूँ कि आप लोग मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दीजियेगा।"

यह एक प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रायः एक ही विषय में दक्षता प्राप्त कर सकता है। ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जो एक से अधिक विषयों में पूर्ण विद्वान् या पारंगत हुए हों। कई बार ऐसा हुआ है कि अच्छे अच्छे लेखक बहुत ही छोटी सभाओं में भी एक अक्षर न बोल सके। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध ग्रन्थकार एडिसन को एक बार एक सभा में बोलना पड़ा। आप ने खड़े हो कर कहा—"I conceive, I conceive, Gentlemen! I conceive." आगे एक शब्द भी मुँह से न निकला और आप चुपचाप अपने स्थान पर बैठ गये। इस पर एक लेडी ने आप के साथ बहुत अच्छी दिल्लगी की। उसने खड़े होकर कहा—"My friend, Mr. Addison, has conceived thrice, but brought forth nothing"*

"ब" (शेष आगे।)

—:o:—

*अंगरेज़ी में conceive शब्द के दो अर्थ हैं, एक विचारना या समझना और दूसरा गर्भ धारण करना। इसलिये इस वाक्य का अर्थ होता है—"मेरे मित्र मि० एडिसन ने तीन बार विचार किया (अथवा गर्भ धारण किया) पर फलोत्पत्ति कुछ भी न की।"

बरसात की सैर।

(लेखक पं० लक्ष्मीशंकर द्विवेदी, मिर्ज़ापुर।)

मिर्ज़ापुर पहाड़ी ज़िला है, केवल उत्तर का भाग भागीरथी के कुछ इस पार और कुछ उस पार समथर भूमि पर अवस्थित है। नगर गंगा जी के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है। विन्ध्याचल की पर्वतश्रेणी नगर के दक्षिण की ओर दो ही मील से आरम्भ हो जाती है। वर्षाकाल में यहाँ का जलवायु बहुत उत्तम रहता है। नगर से थोड़ी ही थोड़ी दूर पर यहाँ बहुत से झरने हैं। ज़िले भर में "जल प्रपात" (वाटरफ़ाल) भी बहुत से हैं, परन्तु अधिकांश बहुत दूर दुर्गम तथा हिंस्र जन्तुओं के केवल लीला-निकेतन हैं; अतएव वहाँ के अपूर्व और प्राकृतिक विचित्रताओं से पूर्ण दृश्यों को बिरले ही बिरले व्यक्तियों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

नगर के समीप तीन और चार कोस की दूरी पर तीन बहुत बड़े जल-प्रपात हैं। इनमें से एक का दृश्य तो बरसात में बहुत ही कम लोग देख सकते हैं। नगर से आठ मील पर "टाँडे की दरी" (टाँडाफ़ाल) एक अतिशय रमणीक और बहुत बड़ा जलप्रपात है। यहाँ दो नदियाँ दो ओर से आकर एक ही स्थान में पर्वत से नीचे गिरती हैं। दक्षिण की ओर से आने वाली नदी ने अपने गिरने का स्थान कुछ ढालुवाँ बना लिया है, परन्तु पश्चिम की ओर से आने वाली नदी बिलकुल सीधी लगभग दो सौ फ़ुट की गहराई में गिरती है। जिस रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर अच्छी वर्षा हो जाती है, उसके दूसरे दिन प्रायः अधिक सैलानी लोग वहाँ पहुँच जाते हैं। इस प्रपात का शब्द चार मील की दूरी तक अच्छी तरह सुनाई देता है। जिस समय प्रचण्ड वेग से दोनों नदियाँ अधोमुख पतित होती हैं और उनमें से जल के छींटे बादल बन कर सैकड़ों फ़ुट ऊपर उठते हैं उस समय एक अद्भुत दृश्य दिखलाई देता

है। इनमें से दक्षिण दिशा वाली नदी को बाँध कर नगर में पानी पहुँचाने के लिये "वाटरवर्क्स" की ओर से कई साल से काम लगा हुआ है। सन् १९१५ ईसवी से नगर वालों को, उस अद्भुत दृश्य को अधूड़ा बना कर उसी नदी का पहाड़ी पानी दिया जायगा। इसी प्रकार नगर से लगभग ६ मील पर "वरघाट" नामक एक और बड़ा जलप्रपात है, जिसे अब हम जबलपुर के नर्मदा के जलप्रपात के आदर्श पर, विश्वकर्म्मा की कारीगरी की करतूत कह सकते हैं।

१ सितम्बर १९१३ से लेकर कई दिनों तक बादलों के दल आकाशमण्डल को घेर कर वारि-धारा से बराबर भूमि को भिगोते रहे। तीसरी तारीख़ को मैं प्रातःकाल घर में बैठा हुआ घन-घोर घटाओं की घुड़दौड़ देखता हुआ मित्रवर बाबू चन्द्र-लाल जी से बातें कर रहा था। सलाह ठहरी कि आज वरघाट चलना चाहिये। अस्तु, शीघ्र ही हम लोग भोजन कर और कुछ जलपानादि का सामान साथ लेकर एक्के द्वारा चल पड़े। रास्ते भर हम लोग बराबर पानी से भीगते गए। कभी कभी वर्षा ऐसी प्रबल हो जाती कि विवश हो कर कहीं कहीं पर किसी वृक्ष के नीचे एक्का रोक देना पड़ता। हम लोग कठिनता से दो एक घंटे की राह घंटे में समाप्त कर १ बजे प्रपात पर पहुँचे। उस दिन नदी लगभग दो सौ .फुट की चौड़ाई में भयंकर नाद के साथ बाम्बे-मेल के चौगुने वेग में आ कर नीचे गर्त में तीन ओर से गिर रही थी। तीन ओर की जल-धाराओं के पतन के संघर्षण से अगणित जलकण एक विराट फ़ौवारे के रूप में .खूब ऊपर उठ रहे थे। हम लोग वर्षा काल में बहुत बार वहाँ गये हैं, परन्तु नदी और प्रपात का वैसा विशाल दृश्य कभी नहीं देखा। जिस समय हम लोग स्नान कर रहे थे उसी समय अकस्मात् अस्ताचल-गामी भगवान् भास्कर ने मेघ-माला को हटा कर दर्शन दिया। फिर क्या था, उस प्रपात से उठते हुए अतिशय ऊँचे धुआँधार में दो इन्द्र-धनुष उदय होगए। हम लोगों ने सुना और पढ़ा था कि जबलपुर के नर्मदा-प्रपात में इन्द्र-धनुष दिखाई देता है, और उसी समय में नर्मदा में भयानक बाढ़ आने का समाचार भी मिला था। बस उसी समय तीनों व्यक्तियों ने निश्चय कर लिया कि नर्मदा का प्रपात देखना चाहिए। घर आ कर सलाह ठहरी कि बम्बई तक चलना चाहिए और बीच में जितने प्राचीन और दर्शनीय स्थान हों उनको भी देखते चलें।

अस्तु १७ सितम्बर १९१३ को हम लोगों ने ११ बजे स्टेशन तक पहुँचाने वाले मित्रों को बिदा कर बम्बई मेल से करुई को प्रस्थान कर दिया। २ बजे मानिकपुर में मेल छोड़ना पड़ा। एकाएक वहाँ स्टेशन पर मेरे पुराने मित्र, हिन्दी भाषा के विख्यात भक्त और काशी नागरीप्रचारिणी सभा के स्थापकों में से एक श्रीयुत ठाकुर शिवकुमार सिंह जी सब-डिपुटी इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स करवी डिवीज़न से भेंट होगई। शोक है कि उनके भाई का देहान्त हो गया था जिससे वे छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। परन्तु उन्होंने कृपा कर के हम लोगों को पंडों से सावधान कर, ठहरने के लिये उचित प्रबन्ध कर दिया। हम लोग घर से पानी में भीगते हुए चले थे। परन्तु मानिकपुर में आकर कुछ ही घंटों के पश्चात् स्वच्छ आकाश तथा कड़ी धूप देखनी पड़ी। थोड़ी देर में झाँसी जानेवाली जी० आई० पी की गाड़ी भी आ गई, हम लोग उस पर चढ़ कर कर्वी की ओर चले। मानिकपुर से कर्वी तक एक उत्तम और विचित्र पहाड़ी दृश्य दिखाई देता है। दोनों ओर घनघोर और भयानक वन पड़ते हैं, बस्ती का दिखाई देना दुर्लभ है। कहीं कहीं पर पहाड़ को काट कर लाइन लेगये हैं और कहीं कहीं पर सैकड़ों .फुट गहिरे गर्त को पत्थर के ढोकों से पाट कर लाइन बिछाई गई है इसी प्रकार उस पर्वतमाला में चक्कर काटती हुई गाड़ी चली जा रही थी। दोनों ओर अनेक प्रकार के वन-वृक्ष दिखाई दे रहे थे, जो वर्षा के अभाव से मुरझा रहे थे। मानिकपुर से कर्वी के बीच में एक स्टेशन पड़ता है। यहाँ गरमी के दिनों में पीपों में

भर कर अन्यत्र से जल लाया जाता है। खेद है कि इस प्रान्त में प्रायः श्रावण ही से सूखा पड़ा हुआ था, नहीं तो इस राह का दृश्य बहुत ही आनन्द-दायक होता। मेरे एक मित्र का, जो समग्र भारतवर्ष का भ्रमण कर चुके हैं, कथन है कि दार्जिलिङ्ग हिमालियन रेलवे को छोड़ कर भारतवर्ष भर में मानिकपुर से झांसी तक इस जोड़ का रेलवे दृश्य कहीं नहीं है। परन्तु एक दूसरे मित्र इसी को सबसे उत्तम बताते हैं। जो कुछ हो, इस लाइन के निकालने में जी० आई० पी० रेलवे ने बहुत द्रव्य व्यय किया है। सायंकाल चार बजे के समीप हम लोग कर्वी पहुँच गए।

कर्वी—सीतापुर वा चित्रकोट* ।

कर्वी में केवल एकही पक्का है, पर वह भी ठीक नहीं। कर्वी से सीतापुर बैलगाड़ी में आना जाना पड़ता है। गाड़ी बहुत हलकी, छोटी और तंग होती है। दो बैल जुतते हैं। इस प्रकार की गाड़ी मैंने जगदीश पुरी में देखी थी। कर्वी के असिस्टेण्ट स्टेशन-मास्टर मेरे सहगामी बाबू चन्दूलालजी के पुराने सहपाठी निकले। उन्होंने झटपट एक बैलगाड़ी ठीक कर दी, उसी पर हम लोग अपना अपना सब सामान रख कर चले। कर्वी एक अच्छी बस्ती है। श्रीमन्त नारायण राव पेशवा का बनवाया हुआ एक बड़ा मकान और तालाब है, जिसमें इस समय थाना, तहसील, स्कूल और ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के कार्य्यालय हैं। बन्दर यहाँ बहुत हैं। पेशवा का प्रासाद देखते हुए पयस्विनी नदी पार कर, कुछ दूर पक्की फिर बहुत ही भ्रष्ट ऊँची नीची कच्ची सड़क में उलटते पलटते सूर्य्यास्त होते होते सीतापुर हम लोग पहुँच गये। लगभग तीन मील कच्ची सड़क है और लाखों यात्री प्रतिवर्ष आते जाते हैं, परन्तु खेद है कि पी० डब्लू० डी० या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड उसे पक्की नहीं बनवाती। उस कच्ची सड़क की मरम्मत भी नहीं कराई जाती। हिन्दुओं का तीर्थस्थान है न! इस निर्जीव जाति से ऐसे कार्य्यों में व्यय करने के लिये धन कहां! एक देवालय व्यर्थ बनवाने या पंडित को कुकर्म करने के लिए चाहे कितना ही द्रव्य दे देने के लिये सब कुछ है!!

सायंकाल के पश्चात् हम लोगों ने चित्रकूट की छोटी परिक्रमा कर डाली। इस परिक्रमा में बहुत से मन्दिर और शिवालय हैं; जिनमें बुंदेलखंड के महाराजों के बनवाये मुख्य हैं। भगवान् रामचन्द्रजी की "पर्णकुटी" भी इसी परिक्रमा में है। यहाँ अब एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास जी की कुटी वाला स्थान टूटा पड़ा है, अब उनके नाम पर नदी किनारे एक साधु एक छोटा सा मन्दिर बनवा कर उसमें गोस्वामी जी की मूर्त्ति स्थापित कर, अपनी जीविका चला रहा है। मृदगन्ध जी के नाम पर जिनसे रामचन्द्रजी ने चौमासा बिताने के लिए भूमि माँग पर पर्णकुटी बनाई थी, एक मन्दिर है; जिसमें शिवलिङ्ग स्थापित है। यह परिक्रमा चारों ओर पक्की बनी हुई है और नदी के तीर से आरम्भ होती है। रात सीतापुर के प्रधानाध्यापक महाशय के यहाँ बिता कर दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग "कामतानाथ" की परिक्रमा के लिये चले।

कामतानाथ ।

पाठशाला से एक मील से कुछ ऊपर कामतानाथ की पहाड़ी है। रास्ते में कई एक बड़े बड़े मठ और मन्दिर मिलते हैं। साधुओं की दूकानें भी बहुत हैं। कामतानाथ एक छोटा सा पहाड़ का टुकड़ा है, जिसे लोग शालग्राम की मूर्त्ति मानते और उसकी परिक्रमा करते हैं। यह परिक्रमा लगभग चार मील की और पक्की बनी हुई है। राह में बराबर मन्दिर मठ और शिवालय बने हुए हैं, जिनमें अधिकतर बुँदेलखण्ड के राजाओं के और विशेष कर महाराज अमानसिंह के बनवाए हुए हैं। यह राजा बड़ा ही धर्मात्मा और दानी हो गया है। मनुष्यों की कौन कहे वह पशु पक्षियों तक के भोजन की व्यवस्था करता था। हमारे यहाँ होली में जो

* चित्रकूट की एक बस्ती का नाम "सीतापुर" है।

लोग नटों की नक़ल करते हैं. वे गाते हैं "कहाँ गए राजा अमान हो, रोवें बन की चिरैय्या।" ये प्राचीन मन्दिर, टूटे फूटे ग्रैार जीर्ण दशा में हैं. परन्तु महन्तों के मन्दिर ग्रैार मठ अच्छी अवस्था में हैं ग्रैार उनमें गावँ तथा जागीरें लगी हुई हैं। पूर्व ग्रैार दक्षिण की ग्रोर एक मन्दिर में पहाड़ का एक कोना निकला हुआ है, जिसे कामतानाथ का मुखारविन्द कहते हैं। इस पहाड़ी के पश्चिम "खोई" नाम की एक बस्ती है, इसमें एक पाठशाला भी है ग्रैार यहाँ का खोग्रा बहुत उत्तम होता है। इस परिक्रमा में एक चैापाड़े के महन्त हैं। इनके सुविशाल मन्दिर के साथ एक बाग़ ग्रैार एक पक्की ग्रैार उत्तम बावली है। महन्त भी सच्चे साधु हैं।

इस पहाड़ी का बरसाती पानी जहाँ जहाँ से बहता है वहाँ वहाँ एक एक पत्थर पर एक एक तीर्थ का नाम खोद कर लगाया हुआ है। सबसे विशेषता इस पहाड़ी में यह है कि काँटेदार वृक्ष उस पर नहीं उगते।

इस परिक्रमा को पूर्ण कर, हम लोगों ने डेरे पर आकर भोजन बनाया ग्रैार खा पीकर आराम किया। फिर ३ बज जाने पर एक पथप्रदर्शक को साथ लेकर "हनुमानधारा" देखने के लिये प्रस्थान किया।

हनुमानधारा।

हनुमानधारा सीतापुर से तीन मील से कुछ ऊपर है। यहाँ भूमि से ३६० सीढ़ियाँ पर्वत पर चढ़कर हनुमानधारा पर पहुँचना होता है। पहाड़ के नीचे रास्ते में दोनों ग्रोर बबूल के वृक्षों में रंग बिरंगे कपड़ों के अगणित टुकड़े लगे हुए थे। पूछने पर किसी ने सन्तोषदायक उत्तर न दिया। परन्तु एक महाशय ने कहा कि "भगवान् रामचन्द्रजी राह भूलने के भय से, मार्ग के वृक्षों में अपना बल्कल फाड़ फाड़ कर अटकाते जाते थे, वही प्राचीन परिपाटी यात्रियों द्वारा, विशेष कर स्त्रियों द्वारा, अब तक चली आ रही है।" यहाँ पर्वत के नीचे एक बहुत बड़ी पक्की बावली बनी है। हनुमानधारा में दे स्थानों से जल गिर रहा था, उसमें प्रधान धारा के नीचे एक ढालू चट्टान में हनुमानजी की मूर्ति बनाई हुई है। मूर्ति की बाईं भुजा पर जलधारा गिरती है। फिर वही जल कई एक बड़े बड़े कुण्डों में होता हुआ पर्वत के अज्ञात दरारों में गुप्त हो जाता है। यहाँ के पुजारी वा महन्त के एजेण्ट पूरे कलियुगी आचार्य्य हैं। जिस समय हम लोग वहाँ पहुँचे आप एक दासी से धर्म्मालाप कर रहे थे। इसी प्रकार चित्रकूट भर में अगणित महन्तों में अधिकांश नाम-मात्र के साधु ग्रैार पूरे डबल गृहस्थ हैं। उनके मन्दिर में एक दे दासियाँ वर्त्तमान हैं।

हनुमानधारा से कुछ ऊपर चढ़ कर एक अत्यन्त साधारण मन्दिर में भगवती जानकी जी की मूर्त्ति स्थापित है। इसे लोग सीताजी की रसोई का स्थान कहते हैं। पूछने पर प्रगट हुआ कि इस पहाड़ पर कुछ दूर पर दे बड़े तालाब भी हैं। परन्तु अँधेरा हो जाने से हम लोग शीघ्रता-पूर्वक लैाट पड़े ग्रैार डेरे पर पहुँचकर भोजन इत्यादि कर सो रहे।

अनुसूयाजी।

तीसरे दिन प्रातःकाल एक राह दिखानेवाले मज़ूर के सिर पर बिस्तर ग्रैार भोजन का सामान रख कर हम लोग चले। यह चक्कर दे दिन ग्रैार एक रात का सोच लिया गया।

प्रमोदवन—चित्रकूट से एक मील पर पहले प्रमोदवन पड़ा। प्रमोदवन को महाराज रघुराजसिंह बाँधवेश ने बनवाया था। यह बहुत बड़ा बाग़ परन्तु बेमरम्मत दशा में है। चारों ग्रोर पक्की ग्रैार ऊँची चहारदीवारी है, जिसमें भीतर की ग्रोर एक सी बराबर कोठरियाँ बनी हुई हैं। पूरब पश्चिम में दे प्रकाण्ड फाटक ग्रैार बीच में दे विशाल मन्दिर हैं। इनमें भी कई एक परिक्रमाएँ नीचे ऊपर बनी हैं। इस प्रकार सात परिक्रमाग्रों के बीच में "लक्ष्मी-नारायण" की भव्य ग्रैार दर्शनीय मूर्त्ति महाराज

रघुराजसिंह जी की अनन्य भक्ति की द्योतक विद्यमान है। प्रमोदवन के पूर्व की ओर पास ही से पयस्विनी नदी गई है। इससे यह स्थान अतिशय रमणीक है। यहाँ २२ आचारियों के लिये नित्य भोजन तथा आगन्तुकों के लिये सदावर्त मिलता है। आचारी यहाँ के सज्जन विद्वान् और निर्लोभी हैं। चित्रकूट भर में यह सबसे उत्तम और बेजोड़ स्थान है तथा इसका "प्रमोदवन" नाम सर्वथा सार्थक है। इसके व्यय-निर्वाहार्थ महाराज ने कुछ जागीर दे दी थी और प्रबन्ध उनके आचार्य्य के अधीन अब तक होता आ रहा है। वर्त्तमान महाराज का ध्यान इसकी ओर तनिक भी नहीं है।

जानकीकुण्ड—प्रमोदवन से आगे एक मील पर जानकीकुण्ड है। पयस्विनी नदी के बीच में पत्थर की चट्टानें पड़ गई हैं, जहाँ जल चक्कर देकर कुछ वेग से बहता है। उसी का नाम लोगों ने जानकी-कुण्ड रख छोड़ा है। ऊपर दो तीन साधुओं के घर हैं। परन्तु लौटने पर मैंने एक महाशय से सुना कि वहाँ नदी के करारों में कई एक गुफाएँ हैं, जहाँ अच्छे महात्माओं का तपस्थान है।

फटिकशिला—जानकीकुण्ड से दो मील आगे "फटिकशिला" है। दो बड़ी समथर और ऊँची चट्टानें नदी के किनारे हैं, इसी का नाम फटिकशिला है। पत्थर भी साफ़ और कुछ श्वेत है। इस समय मुझे "फटिकशिला बैठे दोउ भाई" गोस्वाजी की यह चौपाई याद आ गई। यहीं पर जयन्त, जनकनन्दिनी के चरण में चोंच मार कर सामने के पर्वत शृंग पर जा बैठा था, जहाँ रामचन्द्रजी के बाण ने उसकी एक आँख फोड़ दी थी। यह स्थान अत्यन्त रमणीक और चारों ओर पहाड़ तथा घनघोर जंगल से घिरा हुआ है। यहाँ स्नान और जलपान कर ९ बजे हम लोग अनसुयाजी के लिये चले। अब इस अटपटी राह में भगवान् भास्कर की प्रखर किरणों ने चलना कठिन कर दिया। बीच में बाबूपुर ग्राम में दस मिनिट विश्राम कर फिर आगे चले। यहाँ से थोड़ी दूर आगे पथ पहाड़ के एक दर्रे में से होकर गया है। दोनों ओर बड़े और गझिन वृक्ष तथा हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण भयानक जंगल है जिसमें केवल एक पगडंडी-मात्र है। कोई बाहरी मनुष्य इस पगडंडी से अकेले जाने का साहस कदापि नहीं कर सकता। जंगल के बीच में अनसुयाजी का पुराना टूटा फूटा फाटक पड़ता है। प्रातःकाल से बराबर चलते चलते उस कड़ी धूप में कई एक नाले और एक नदी नाँघ कर एक बजे हम लोग अनसुयाजी पहुँचे। यहाँ नदी से ऊपर अनसुयाजी, अत्रिमुनि तथा दत्तात्रेय के तीन छोटे छोटे मन्दिर हैं। इनसे सटा हुआ "सिद्ध बाबा" का समाधि स्थान है। यहाँ सिद्ध बाबा एक अच्छे महात्मा हो गए हैं। उनकी समाधि के नीचे एक पक्की और बड़ी धर्म्मशाला है। यहाँ पर पहाड़ बिलकुल सीधा और वृक्षशून्य है, जिसमें मधुमक्खियों के बहुत से छत्ते लगे हुए हैं। उनके डर से यहाँ दिन में आग नहीं जलाई जाती।

पयस्विनी नदी का उद्गम स्थान अनसुयाजी मानी जाती हैं। लोग उन्हीं के तप से इस नदी की उत्पत्ति बताते हैं। परन्तु नदी में जल और आगे तक दिखाई देता था। अनसुयाजी और सिद्ध बाबा के स्थान के नीचे से कई सोतों द्वारा जल नदी में जा रहा था। वहाँ के पुजारी ने बताया कि गरमी के दिनों में आगे पानी सूख जाता है और केवल अनसुयाजी के नीचे से नदी में जल रह जाता है। अतएव पयस्विनी नदी को अनसुयाजी ने अपने तपोबल वा पातिव्रत-बल से बहाया था और अत्रि मुनि के दर्शनार्थ भगवान् राचन्द्रजी उनकी इस तपोभूमि में आए थे। यहीं पर अनसुयाजी ने सीताजी को पातिव्रत-धर्म का उपदेश दिया था। अनसुयाजी और सिद्ध बाबा के नीचे नदी के तीर पर पड़ी हुई बड़ी बड़ी शिलाओं पर हनुमान्जी आदि की बहुत सी मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। नदी के दोनों पार्श्व का जंगल बहुत ही सुहावना है। यदि किसी प्रकार इस पहाड़ के ऊपर चढ़ा जाता तो इस स्थान का अद्भुत दृश्य पूरा दिखाई

देता। परन्तु हम लोग बहुत थके और भूख से व्याकुल हो रहे थे। अस्तु, कुछ दूर आगे जाकर नदी के किनारे एक वट-वृक्ष के नीचे हम लोगों ने भोजन बनाया। यहाँ भोजन बनाने और खाने में दो बड़े बन्दरों ने बहुत तंग किया। किसी प्रकार खा पीकर ४ बजे सायंकाल को वहाँ से हम चले। अनसूया जी बहुत रमणीक, अतिशय उत्तम और एक अलौकिक स्थान है। यद्यपि यहाँ तक पहुँचने में कष्ट भी बहुत है परन्तु चित्रकूट आने वालों को इस अपूर्व स्थान का अवलोकन अवश्य करना चाहिये।

अनसूया जी से गुप्त गोदावरी की गुफा लोग चार कोस बताते थे, किन्तु मेरी समझ में ६ कोस से कम नहीं है। चार बजे दिन के चले हुए पथरा-ग्राम तक पहुँचते २ बिलकुल अँधेरा हो गया। भला जंगल पार कर एक ग्राम में तो पहुँच गये। अस्तु, उस ग्राम में एक ब्राह्मण देवता के द्वार के चबूतरे पर उनकी आज्ञा से रात काटने के लिये बिस्तर बिछाया। दैव-दया से गाँव में दूध मिल गया। उसी को थोड़ा थोड़ा पीकर हम लोग सो रहे। साढ़े चार बजे प्रातःकाल अँधेरे ही में वहाँ से कूच कर किसी प्रकार साढ़े आठ बजे हम लोग गुप्त-गोदावरी की गुफा के द्वार पर पहुँचे।

गुप्त-गोदावरी की गुफा।

यह स्थान भी पहरा के जागीरदार के अधिकार में है। किन्तु कर्वी के एक महन्त के एजेण्ट पैसा वसूल करने के लिये यहाँ भी रहते हैं। चमगादड़ों की यहाँ अत्यन्त अधिकता है, जो वहाँ के छोटे छोटे मन्दिरों, गुफा और पर्वत की दरारों में भरे हुए हैं। वहाँ पहुँचने पर इनकी विष्ठा की भयंकर दुर्गन्ध से जी घबड़ाने लगा। हम लोग साथ में एक बक्स दिया-सलाई और रास्ते के एक ग्राम से तेल लेते गये थे कि मसाल जला कर गुफा को भली भाँति देखेंगे। परन्तु वहाँ के चतुर और धूर्त पुजारी ने कुल तेल रख लिया और केवल एक बड़ा दीपक जला कर हम लोगों को गुफा में ले चला। गुफा पहाड़ के मध्य-भाग में है। गुफा के द्वार तक पहुँचने का मार्ग उस बातूनी पुजारी ने ऐसा बना रक्खा है कि अन-जान मनुष्य का वहाँ तक पहुँचना भी कठिन है। जहाँ गुफा के भीतर जाने का मार्ग है वहाँ पहाड़ में दरवाज़े की भाँति छेद हो गया है। द्वार की ऊँचाई अच्छी है, परन्तु चौड़ाई एक मनुष्य के अच्छी तरह जाने भर की है। हम लोगों के भीतर पहुँचते ही अगणित चमगादड़ों के उड़ने के शब्द से गुफा गूँज उठी। यहाँ भी इनकी विष्ठा की असह्य दुर्गन्ध का सामना करना पड़ा। भारतवर्ष भर में प्रकृति देवी की बनाई हुई इसके बराबरी की कोई गुफा नहीं है। इस गुफा को हम प्रकृति की आश्चर्यमयी अलौकिक विचित्रता कह सकते हैं। गुफा खूब चौड़ी है और लम्बाई का पता तो आज तक किसी ने नहीं पाया। दाहिनी ओर से हम लोग उस ऊँची नीची और पत्थर के ढोकों से पूर्ण भूमि में सँभलते हुए चले। पहले एक बहुत बड़ा और गोलाकार स्थान मिला, जिसमें लग भग एक सहस्र मनुष्य समा सकते हैं। इसके आगे थोड़ी दूर और जाने पर एक झरना मिला। कुंड में पानी के गिरने का कलकल शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा था। हम लोगों ने उस दीपक के प्रकाश में वहीं स्नान किया। इसी झरने का नाम "गुप्त-गोदावरी है"। अब पुजारी वा पंडा वहाँ रक्खी हुई मूर्त्तियों पर पैसा चढ़ाने के लिये हठ करने लगा। हम लोग अपना अपना कमीज़, वेस्टकोट और कोट सब बाहर छोड़ आये थे। अतएव उनसे विनय करनी पड़ी कि महाराज बाहर चल कर सब एक साथ चढ़ा देंगे। फिर और आगे कुछ दूर तक पुजारी हम लोगों को प्रार्थना करने पर ले गया, परन्तु अन्धकार की अधिकता, ऊँची नीची और बड़े बड़े ढोकों से पूर्ण भूमि तथा आगे वट-वृक्ष की जड़ वा कंघी के दाँतों की भाँति ऊपर लटकती हुई चट्टानों से सिर फूट जाने के भय से हम लोग लौट पड़े। आगे रास्ता तंग और छत की ऊँचाई भी कम होती जाती थी। लगभग एक

फ़र्लांग के हम लोग गुफा में चले गये थे, यदि प्रकाश का प्रबन्ध यथेष्ट होता तो ग्रैार भी कुछ आगे जाने का साहस पड़ता पर वहाँ साँप अधिक हैं यह भी पहले से सुन रक्खा था तथा आगे मार्ग भी जल से पूरित है अतएव अब हम लोग बाईं ग्रोर से लैाटे। एक स्थान पर ऊपर छत में पहाड़ ठीक शिवालय के गुम्बज की भाँति बड़ी सफ़ाई के साथ कट गया है जैसे किसी ने चाक़ू से छील कर बनाया हो। शिवालय में ऊपर घंटे के लिये साँकल जहाँ लटकाई जाती है, ठीक उसी स्थान पर बीचो बीच घंटे के आकार का एक बड़ा सा पत्थर ऊपर एक धरन की भाँति पड़े हुए पत्थर के सहारे लटक रहा था। घंटे वाला पत्थर किसी बड़े बाँस से हिलाने पर हिलता है। खेद है कि हम लोग अपने साथ कोई बड़ी लकड़ी नहीं ले गये थे। इसका नाम "खटखटा चोर" लोगों ने रख छोड़ा है ग्रैार कहते हैं कि "एक चोर ने सीता जी के अलङ्कार चुरा कर इसी गुफा में छिपाये थे, उस चोर को लक्ष्मण जी ने बाण से मार कर यहाँ लटका दिया है"। श्रीयुत ठाकुर शिवकुमार सिंहजी कहते थे कि "मैं इस गुफा में आठ मशाल ग्रैार हरीकेन लेकर दो फ़रलाँग तक गया हूँ।" उन्हीं के द्वारा यह भी विदित हुआ कि इस प्रान्त के स्कूल-इंसपेक्टर श्रीयुत पण्डित दीनदयालु जी तिवारी उनसे बहुत अधिक दूर तक गये थे। यदि यह गुफा साफ़ कराई जाय तो एक अत्यन्त अद्भुत ग्रैार दर्शनीय स्थान हो जाय। गुफा के भीतर वाले झरने का जल बहुत ही मीठा ग्रैार साफ़ है *। खेद है कि चित्रकूट से बहुत दूर ग्रैार ठीक तथा सुगम राह न होने से केवल बिरले अन्धभक्त यहाँ तक आते ग्रैार उस जल में स्नान तथा उसका पान कर चले जाते हैं, उनमें से दैवात् ही किसी का ध्यान प्रकृति की इस विचित्रता पर पड़ता होगा। चित्रकूट से लेकर यह सब स्थान पहरा के रावबहादुर की जागीर में है, ग्रैार राव साहिब बुँदेलखंड एजेंसी के अधीन हैं, किन्तु खेद है कि उनका ध्यान भी इसकी ग्रोर तनिक नहीं है।

बाहर से देखने में लगभग सो गज़ की चैाड़ाई तक पहाड़ की कुल चट्टानें फटी हुई हैं। मेरी समझ में यहाँ कई बार वज्रपात हुआ है, जिससे समग्र चट्टानें चटक गईं ग्रैार यह गुफा बन गई। दूसरे यहाँ का पत्थर भी कुछ नरम है। बाहर भी पहाड़ के भीतर एक बड़ी कोठरी की भाँति कुण्ड है। इस कुण्ड में से वर्षा का जल नीचे बने हुए एक के बाद दूसरे कुण्डों में से होता हुआ नीचे चला आता है। बाहर गुफा की बाईं ग्रोर वर्षा में एक छोटा जल-प्रपात बन जाता है। अस्तु बाहर का भी दृश्य अतिशय रमणीक ग्रैार मनोरम है।

साढ़े दस बजे गुप्त-गोदावरी से डेढ़ मील चल कर "पहरा" की राजधानी चैाबेपुर में आकर ग्रैार हलवाई से पूरी बनवाकर हम लोगों ने पेट पूजा की। उस समय अवर्षण से जेठ बैशाख की भाँति लू चलने लगी तथा हम लोगों के पैरों में चलते चलते छाले पड़ गए थे। अस्तु, कुछ घंटों के लिये एक व्यक्ति के यहाँ विश्राम करना पड़ा।

चैाबेपुर अच्छी बस्ती है। यहाँ के जागीरदार राव बहादुर चैाबे रामचन्द्र जी महाराज, अँगरेज़ी फ़ारसी के विद्वान् तथा हिन्दी भाषा के कवि हैं। आपकी बनाई हुई "दधिलीला, माखनलीला" की भाँति कई एक लीलाएँ मैंने वहाँ एक मनुष्य के पास देखीं। कुछ लड़कों को नैाकर रख कर राव साहेब प्रायः रास कराते ग्रैार अपनी कविता का आनन्द अनुभव करते हैं। खेद है कि उधर किसी गाँव में एक भी पाठशाला नहीं है। वहाँ एक मनुष्य से दैवात् भेंट हो गई जो पहिले मिरज़ापुर में रह चुका था। उसके दो लड़के आठ ग्रैार दस बरस के बाहर खेल रहे थे। मैंने कहा 'तुम इनको पढ़ाते क्यों नहीं? उसने शोक के साथ उत्तर दिया, "महाराज़ क्या

* वास्तव में वहाँ पर दो सोते हैं। एक ठंडे जल का ग्रैार दूसरा गरम जल का। परन्तु लोभी ग्रैार धूर्त पुजारी ने उस समय हम लोगों को नहीं बतलाया। वहाँ वाले उन सोतों को "जूड़ी, ताती" कहते हैं।

करें, यहाँ तथा आस पास के किसी गाँव में कोई पाठशाला नहीं है, कैसे पढ़ावें। यदि यह इलाक़ा सरकार अँगरेज़ बहादुर का होता तो यहाँ अवश्य पाठशाला होती और आप मेरे लड़कों को निरक्षर न देखते।" वह व्यक्ति चार रुपए मासिक पर नौकर है और उसे चार प्राणियों का पालन करना पड़ता है। चौबेपुर में राव साहेब के पूर्वजों का बनवाया हुआ एक शिवालय और एक पक्का और अच्छा तालाब है। यहाँ से ढाई बजे चल कर किसी प्रकार उठते बैठते ७ बजे रात को हम लोग सीतापुर पहुँचे।

सीतापुर से दो तीन कोस पर "देवाङ्गना" और "कोटितीर्थ" दो और अच्छे स्थान हैं, जहाँ एक एक झरने हैं। वहाँ से ७ कोस पर "भरत कूप" है, जहाँ सब तीर्थों का जल भरत जी ने उस कूप में छोड़ा था। और इससे भी अधिक दूर पर महर्षि वाल्मीकि जी का आश्रम है। परन्तु हम लोगों ने चित्रकूट की उष्णता और चलने की थकावट से घबड़ा कर यहाँ से दूसरे ही दिन चलने का निश्चय कर लिया। मथुरा, अयोध्या की भाँति चित्रकूट में भी प्रत्येक स्थानों में बन्दरों की अत्यन्त अधिकाता है। इनके भय से सीतापुर के मकानों के खपरैल काँटों से ढाँके जाते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल सीतापुर से पयान कर कर्वी में वहाँ का उजाड़ दुर्ग और गनेशबाग़ देखते हुए जबलपुर चलने का विचार स्थिर हुआ। परन्तु प्रातःकाल हमारे एक सहगामी ने इतना विलम्ब किया कि हमारी उपर्युक्त अभिलाषा पूर्ण न होने पाई। "गनेश बाग़" और एक अत्यन्त सुन्दर बावली तथा मन्दिर सन् १८३७ ईसवी में विनायक राव पेशवा ने बनाया था। यहाँ के पहिले के राजाओं का दुर्ग बिलकुल टूटा फूटा और उजाड़ है। अस्तु, यहाँ से साढ़े ग्यारह बजे की गाड़ी में चल कर फिर मानिकपुर पहुँचे और वहाँ से ९ बजे रात की गाड़ी से दूसरे दिन प्रातःकाल जबलपुर पहुँचे।

जबलपूर

२२ सितम्बर १९१३ को प्रातःकाल हम लोग जबलपुर पहुँचे। स्टेशन से थोड़ी ही दूर पर राजा सेठ गोकुलदासजी की एक सुन्दर और दो खण्ड की पक्की धर्म्मशाला है। धर्म्मशाला का प्रबन्ध हेल्थ आफ़िसर के निरीक्षण में एक मुसलमान सज्जन के अधीन है। हर कमरे में १ लोहे का पलँग, १ टेबुल और दो तीन कुर्सियाँ हैं। रसोई बनाने के लिये बर्तन और लोहे का चूल्हा भी मिलता है तथा धर्म्मशाला ही में आटे, दाल चावल आदि की दूकान भी है। तीन दिन तक यहाँ लोग ठहर सकते हैं, अधिक दिनों के लिये विशेष आज्ञा लेनी होती है। इस धर्म्मशाला में जहाँ सब बातों का सुख है वहाँ एक बात का घोर कष्ट भी है। शौचालय कुल चार हैं, दो पुरुषों के लिये और दो स्त्रियों के लिये। प्रातः और सायंकाल एक जाते हैं तो चार लोटा लिये किवाड़ खट खटाते हैं। यहाँ पथिकों का आवागमन अधिक रहता है अतएव हेल्थ आफ़िसर को उचित है कि कम से कम चार शौचालय और बनवा दें।

जबलपुर में हम लोगों को नर्मदा का जल-प्रपात देखना था, परन्तु उस दिन हम लोग नगर-भ्रमण करना निश्चित कर एक ताँगा दिन भर के लिये भाड़े करके चले। जबलपुर की सड़कें अच्छी हैं। नगर का बाहरी भाग प्रयाग का सा प्रतीत होता है, किन्तु भीतरी भाग वैसा नहीं है। मकान बहुत ही साधारण हैं। दो या तीन खण्ड के दोही चार अच्छे देखने में आये। सबसे बड़ा और अच्छा प्रासाद राजा सेठ गोकुलदासजी का एक बड़े सरोवर के किनारे बना हुआ है। भवन और मन्दिर में पत्थर की कारीगरी तथा जड़ाऊ काम देखने योग्य है। इसे देख कर तथा पास ले कर हम लोग उनके पुतलीघर में गये। काटन मिल की दशा अब अच्छी है, किन्तु अब भी उस पर ऋण अधिक है। यहाँ से हम लोग उनका काँच का कार्यालय (ग्लास फ़ैक्टरी) देखने गये, उस समय केवल साधारण चूड़ियाँ काटी और चिकनी की जाती थीं। भट्टी टूट गई थी। वहाँ पूछने पर प्रगट हुआ कि शीघ्रही इसकी मरम्मत होनेवाली

है। परन्तु वास्तव में बात यह है कि सेठजी को इस कार्य में बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी है, किन्तु अब भी वे हतोत्साह नहीं हुए हैं। मैनेजर एक जर्मन है। इस समय मुझे इस बात की चिन्ता उत्पन्न हो गई कि क्या भारत के भाग्य में काँच के कार्य्य में कहीं भी कृतकार्य्य होना नहीं बदा है ? यहाँ से हम लोग "गोविन्दभवन" देखने गये। गोविन्द-भवन राय-बहादुर सेठ जीवनदास के चिरंजीव सेठ गोविन्ददास जी के नाम पर बनाया गया है। सेठजी ने भवन और उसकी वाटिका को प्रचुर द्रव्य व्यय कर के प्रत्येक प्रकार से विभूषित किया है, और काम अब भी बराबर लगा हुआ है। प्रत्येक स्थान में बिजली के प्रकाश और पंखे का प्रबन्ध है। छत भूमि और दीवारों पर जयपुरी जड़ाऊ काम बने हैं। चित्र, मूर्तियाँ तथा रँगाई के काम भी अच्छे हैं। वाटिका की सजावट भी सराहनीय है। इस बाग़ को जबलपुर का बुटानिकल-गार्डन तथा ज़ूलोजिकल गार्डन भी कह सकते हैं। इसे देखकर हम लोग धर्म्मशाला लौट आये। पहले हम लोगों ने ताँगा द्वारा जल-प्रपात जाने का विचार किया, परन्तु ताँगा द्वारा प्रातःकाल जाने से नौ या दस बजे तक पहुँचते. सुतरां धर्म्मशाला के मुंशी की मन्त्रणा से उसी रात की साढ़े दस बजेवाली गाड़ी से मीरगंज जाने के लिये हम लोग स्टेशन पहुँचे। मीरगंज में रात स्टेशन ही पर बितानी पड़ी। स्टेशन मास्टर एक महाराष्ट्र ब्राह्मण और सज्जन पुरुष थे, उन्होंने सादर हम लोगों को स्थान प्रदान किया।

प्रातःकाल उठकर और झटपट नित्य कृत्य से निपट कर हम लोग चले। सड़क बहुत साफ़ और अच्छी तथा दोनों ओर मैदान और शस्यविहीन खेत देखते एवं प्रातःकालीन शीतल मन्द समीर का स्पर्श-सुख लूटते हुए चलने लगे। दो मील पर राह कुछ कुछ ढालू होने लगी तथा तीसरे मील के पूरे होने पर हम लोग नर्मदाजी के तीर पर पहुँचे। यहाँ भी पंडा-दल ने चित्रकूट की भाँति चारों ओर से घेर लिया। किसी प्रकार इन पंडों से पिंड छुड़ाकर पहले "भेंड़ाघाट" के घाट पर स्नान किया। यहाँ नर्मदा कलकल नाद करती हुई तीव्र और वक्रगति से गमन करती है, क्योंकि यहाँ नदी में नीचे पत्थर की चट्टानें पड़ गई हैं; अतएव उस प्रखर धारा में सावधानी से स्नान करना पड़ता है। यहाँ से ऊपर चढ़कर एक दूकान से कुछ पेड़े और दूध लेकर तथा दस आने पर दिन भर के लिये एक सेवक को साथ लेकर हम लोग प्रपात की ओर चले। भेंड़ाघाट से लगभग पौन मील पर प्रपात है। राह में बाईं ओर उन दो अँगरेज़ों की समाधि मिली जिन्हें उनके चुरुट के धुएँ की दुर्गन्धि से कुपित होकर मधु-मक्खियों ने मार डाला था।

नर्मदा का जलप्रपात वास्तव में बहुत ही मनोरम है। जल ख़ूब गिर रहा था और जल की छीटें भी बहुत बड़े घेरे में ख़ूब ऊँची उठ रही थीं। हम लोगों को सेवक एक अच्छा पथप्रदर्शक मिल गया था। उसकी सहायता से हम लोग कठिनता-पूर्वक किसी प्रकार प्रपात के किनारे पहुँच पाए। बर्सात के कारण नदी में जल अधिक होने से प्रपात का गर्त अधिक भरा हुआ था, इससे छीटें कुछ कम ऊँची उठती थीं। वहाँ वालों के कथनानुसार गर्त की गहराई तीन सौ फ़ुट से भी अधिक है। जाड़े के दिनों में जब गर्त की गहराई कम हो जाती है उस समय फ़ौवारा और भी ऊँचा उठता है। गर्त एक प्रकार धन्वाकार है, अतएव जल के लगभग तीन ओर से गिरने के कारण फ़ौवारा बँधा हुआ और एक सा बराबर उठा करता है, इसी का नाम धुआँधार है। जल ने अपने गिरने के स्थान पर कई एक नालियाँ बना ली हैं, जिनमें दक्षिण वा नदी के बाईं ओर एक बहुत बड़ी नाली बन गई है, जिसमें से बड़े वेग के साथ जल का प्रवाह गर्त में गिरता है। गर्त के ऊपर दोनों करारों के बीच में नदी का पाट भी बहुत अधिक है। पतन के पश्चात् नर्मदा जी जिस दर्रे वा दोनों ओर की चट्टानों के बीच से होकर निकल गई हैं, उसका दृश्य हमें अधिक आनन्दप्रद प्रतीत हुआ। दोनों ओर की विशाल चट्टानें खड़ी

और कटी हुई पर्तदार हैं जैसे किसी ने बिना काटी हुई पुस्तकें बराबर में चुन दी हों। इस प्रकार नर्मदा की जलधारा से गढ़ी हुई मैली मर्मर की पर्तदार अद्भुत चट्टानें दूर तक एक सी दिखाई देती हैं। अस्तु, एक घंटे से अधिक इस प्रपात की विचित्र शोभा देखते देखते सूर्य की किरणों के असह्य हो जाने से हम लोग लैाटे और फिर उसी घाट पर बोट मँगवा कर मार्बल की चट्टानों की सैर करने चले।

वास्तव में नौका द्वारा "मार्बल राक" की सैर करने में जो अपार आनन्द आया, उतना प्रपात के देखने में नहीं। इस राक के भीतर नर्मदा की गहराई अत्यन्त अधिक है। नाविक (बोटमैन) के कथनानुसार कहीं कहीं दो सौ, तीन सौ फ़ुट तक की गहराई है, इसी से उस राक के भीतर जल बिलकुल स्थिर दिखाई देता है।

थोड़ी दूर नाव के चलने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि हम लोग चारों ओर से घिरे हुए एक बड़े सरोवर में आ गये। वहाँ इस प्रकार का घुमाव है कि नदी के आने की राह का अनुमान करना कठिन होता है। इससे आगे चलकर कहीं नीले पत्थर की चट्टानें हैं तो कहीं लाल पत्थर की; एक ओर काले पत्थर की चट्टानें दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर पीले पत्थर की। इस प्रकार दो फरलांग चलने पर मर्मर की श्वेत चट्टानें आरम्भ होती हैं। यहाँ बीच में एक प्रकाण्ड चट्टान है, जिस पर भूतपूर्व होल्कर-नरेश ने एक श्वेत शिवलिङ्ग स्थापित कर दिया है, जिनका नाम "सिद्धेश्वर महादेव" है। इसके आगे महारानी दुर्गावती के महल पर जाने की टूटी सीढ़ियाँ दिखाई देती हैं, और उसी के सम्मुख "शृङ्गारशैल" है, जिस पर रानी पूजन को जाती थीं। इससे बढ़कर एक ओर की चट्टान में कुछ ऐसे काले दाग़ दिखाई देते हैं जिन्हें लोग "कालभैरव" की मूर्त्ति कहते हैं। इसके आगे "सिद्धकुण्डी" मिली, फिर "दत्तात्रेय महाराज की गुफा"। इसके आगे चलकर सूर्य, चन्द्र तथा गणेशजी के आकार से कुछ मिलती जुलती मूर्त्तियाँ दिखाई देती हैं। वहाँ के लोग कहते हैं कि जिस समय नर्मदा जी आई थीं उस समय यह पहाड़ मक्खन का था और समस्त देवता उनकी अगवानी के लिये यहाँ एकत्र हुए थे। अस्तु, कहीं कहीं सूर्य्य के घोड़े इन्द्र के ऐरावत के और शेषनाग के आने के चिह्न दिखाई दिए। मेरी समझ में तो यह सब केवल जल की कारीगरी-मात्र है। एक स्थान में नदी का मार्ग संकुचित हो गया है और दोनों ओर के करारे समीप हो गए हैं, उसे "बन्दर-कूदनी" कहते हैं। किसी समय कोई बन्दर इस पार से उस पार कूद गया होगा। एक स्थान पर ढालू घाट सा बन गया है, जिसे "स्वर्गद्वार" कहते हैं। यहाँ एक तपस्वी एक प्रस्तर-खण्ड पर बैठे माला फेर रहे थे, हम लोगों ने बोट से उतर कर उन्हें कुछ दक्षिणा दी और रंग बिरंगे पत्थरों के टुकड़े चुने। यहाँ आस पास की चट्टानों में मधुमक्खियों के छत्ते दिखाई दिए। छत्ते कुल उस समय सात थे, जो उसी रात में जलाए जानेवाले थे। किसी समय यहाँ पर बहुत छत्ते लगे रहा करते थे, जिनमें अगणित मधुमक्खियों का निवास रहता था। जब से इन मधुमक्षिकाओं ने दो गोरों का प्राण हरण किया तबसे सरकार की दृष्टि इनकी ओर आकर्षित हुई। अब समय समय पर जहाँ ये छत्ते बड़े कि जलवा दिए जाते हैं। स्वर्गद्वार के आगे "जनेऊधारा" है। यहाँ दोनों ओर के करारे बहुत ही समीप हो गए हैं और नीचे भी ऊँची चट्टानें हैं। गरमी के दिनों में यहाँ नर्मदाजी एक पतली धारा के रूप में आती दिखाई देती हैं। यह स्थान एक विचित्र चित्र सा दिखाई देता है। इसके आगे बोट नहीं बढ़ सकता है। अस्तु, यहाँ से हम लोगों का बोट लैाटा। इस राक के भीतर मर्मर की नरम चट्टानों में जल ने तरह तरह के चित्र बना दिए हैं, उन्हीं को देखकर लोगों ने अपनी अपनी कल्पनाओं के अनुसार नाना प्रकार के नाम रख दिए हैं। मार्बल-राक की जोड़ का दृश्य इस देश में तो नहीं है, प्रत्युत संसार में भी दैवात् ही कहीं दिखाई दे। हम लोगों ने दिन में

इसे देखा, जिस समय धूप भी अधिक थी; परन्तु पूर्णिमा की निर्मल चाँदनी में इसका दृश्य देखने ही योग्य होता है। चाँदनी रात की अकथनीय ग्रैार अनुपम शोभा केवल महाकवियों के लिये एक सर्वोत्तम सामग्री समझनी चाहिए। इस विचित्र दृश्य को देखकर ग्रैार घाट पर बोट से उतर कर हम लोग ऊपर आए।

यहाँ कई एक मन्दिर ग्रैार शिवालय हैं, जिनमें मुख्य ग्रैार सब से ऊँचे स्थान पर "श्रीगैारीशंकर" का मन्दिर है। गैारीशंकर जी की अर्द्धाङ्गिनी मूर्ति प्राचीन ग्रैार सुन्दर है। मन्दिर के चारों ग्रोर की दीवार में ग्रोसारे बने हुए हैं, जिनमें इस समय ८३ खण्डित मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं। किसी समय यहाँ ६४ योगिनियों की मूर्तियाँ स्थापित थीं जिन्हें क्रूरात्मा ग्रैारंगज़ेब ने तुड़वा डाला था। अब गवर्नमेंट ने उन मूर्तियों को चारों ग्रोर के बरंडों में रखवा कर उनके ऊपर की छत मरम्मत करवा दी है। बहुत सी मूर्तियों के टुकड़े शिवालय के पास भी पड़े हैं, उन ८३ मूर्तियों में दो चार गणेश इत्यादि की भी हैं। कोई कोई ऐसी खण्डित हैं कि उनसे यह अनुमान करना कि यह किसकी मूर्ति है, बहुत कठिन है।

यहाँ एक डाँक बँगला ग्रैार एक सरकारी मुसाफ़िरख़ाना है, एक ग्रैार बड़ा डाँकबँगला बन रहा है। भेंड़ाघाट के इस पार राजा सेठ गोकुलदासजी की भी एक धर्म्मशाला है, जहाँ यात्रियों को हर प्रकार का सुख मिलता है। मार्बल की खानें नर्मदा के इस पार ग्रैार उस पार दोनों ग्रोर हैं। नए बँगले के लिए गिट्टियाँ तक संगमरमर के ढोकों से तोड़ी जारही थीं। यहाँ कई एक दूकानों में सफ़ेद, लाल, पीले इत्यादि अनेक रङ्ग के पत्थरों के पेपरवेट तथा शिवलिङ्ग आदि बिकते हैं। यद्यपि वे चुनार के बने पेपरवेट की तुलना में कुछ भी न थे, किन्तु वहाँ का चिह्नस्वरूप तथा लड़कों के खेलने के लिये, हम लोगों ने भी उन्हें क्रय किया। यहाँ एक मुसलमान कारीगर के पास बहुत अच्छी तरह २ की छोटी मूर्तियाँ ग्रैार बटन इत्यादि थे, किन्तु वह मूल्य बहुत अधिक माँगता था। यहाँ डाँकबँगले के पास, भृगु मुनि के स्थान पर एक बंगाली साधु की कुटी क्या घर के हाते के भीतर हम लोगों ने भोजन बनाया। भृगु-आश्रम नर्मदा के बिलकुल किनारे पर है। सरकार ने उसके चारों ग्रोर जँगला लगवा दिया है। आश्रम में अब केवल एक शिवलिङ्ग मात्र है ग्रैार आश्रम के नीचे एक जल का सोता भी है।

जिस समय हम लोग भोजन करने लगे उसी समय पश्चिमोत्तर की ग्रोर से बड़े वेग के साथ जल आया; अतएव बहुत शीघ्रता से भोजन समाप्त कर हम लोगों को साधु महाराज की धूनी का आश्रय लेना पड़ा। घंटे भर तक जल बरसता रहा। तब तक हम लोग उनसे बातें करते रहे। साधु ने वह स्थान दिखलाया जहाँ से लोग नर्मदेश्वर नामक लिङ्ग स्थापनार्थ लाते हैं। उन्होंने कहा कि जब (जाड़े के दिनों में) नर्मदा घट जाती हैं उस समय बहुत तरह के पत्थर ग्रैार शिवलिङ्ग यहाँ मिल जाते हैं। उन्होंने एक ख़ूब हरे ग्रैार एक संग-सितारे का बहुत सुडैाल सुन्दर शिवलिङ्ग दिखलाया, जो निःसन्देह बहुमूल्य था। ऐसे भी पत्थर (वाटरस्टोन) यहाँ मिल जाते हैं कि जिनके भीतर जल भरा रहता है।

पानी निकल जाने पर हम लोगों ने शीघ्रता के साथ स्टेशन की ग्रोर प्रस्थान किया। स्टेशन पर पहुँचने के थोड़ी देर बाद गाड़ी आई, जिस पर सवार हो कर जबलपुर लैाटे। निदान ८॥ बजे रात को धर्म्मशाला में पहुँच कर आगे चलने के लिए हम लोग सोचने लगे यहाँ से हम लोगों का विचार नागपुर जाने का था। परन्तु इसी समय नागपुर से कई एक महाराष्ट्र ग्रैार गुजराती सज्जन धर्म्मशाला में आए। इन लोगों की बातों से हतोत्साह होकर सीधे नासिक जाने का निश्चय कर दिन भर की थकावट मिटाने के लिए निद्रादेवी की गोद में हम लोगों ने विश्राम किया।

दूसरे दिन २४ सितम्बर को प्रातःकाल की गाड़ी से हम लोगों ने नासिक के लिये प्रस्थान किया।

इटारसी तक जी० आई० पी० की पसेंजर ट्रेन में आना पड़ा। इसकी गाड़ियाँ सब पुरानी और झूले की तरह हिलती थीं। दो गाड़ियों को छोड़ कर किसी भी गाड़ी में "संडास और मुत्ता"* न था। पिपरिया स्टेशन के पास पहुँचने पर आकाशस्पर्शी सतपुड़ा की पर्वतश्रेणी दिखाई दी। पँचमढ़ी के यात्री पिपरिया स्टेशन पर उतरते हैं। यहाँ मोटर, ताँगे और गाड़ियाँ मिलती हैं। इटारसी के पास एक टनल वा सुरंग मिला स्टेशन पर खाने पीने की वस्तुएं बहुत ही भ्रष्ट और निकृष्ट मिलती हैं। थोड़ी देर में यहाँ "देल्ही एक्सप्रेस" आगई जिस पर चढ़ कर हम लोग १॥ बजे रात्रि को नासिक पहुँचे।

—:o:—

* जी० आई० पी० की गाड़ियों में पैखाना और पेशाब पैख़ाना के स्थान में संडास और मुत्ती लिखा रहता है।

सूचना और सम्मति।

त्रैमासिक रिपोर्टें।

पाठकों को यह देख बड़ा ही हर्ष होगा कि भारतवर्ष में जितनी नागरी-प्रचारिणी सभाएँ स्थापित हैं, काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा औरों से विशेष पुरानी, माननीय, विश्वसनीय एवं प्रशंसनीय है। सरकार भी इसको मानती है और समय समय पर कितनी ही पुस्तकें, रिपोर्टें आदि भेजा करती है। आज हम जिन रिपोर्टों के विषय में लिखना चाहते हैं वह बंगाल एवं बर्मा गवर्नमेन्ट की अप्रेल से जून तक की और युक्तप्रदेश तथा मद्रास गवर्नमेन्ट की जुलाई से सितम्बर तक की पुस्तकों की है। किस प्रान्त में किस भाषा की कितनी पुस्तकें निकलीं यह निम्नलिखित कोष्ठ से विदित हो जायगा—

बंगाल		मद्रास		युक्त प्रदेश		बर्मा	
अँगरेज़ी	७१	अँगरेज़ी	१२३	अँगरेज़ी	३६	अँगरेज़ी	९
बंगला	४५५	तामिल	२३६	हिन्दी	१६७	बर्मी	२९
संस्कृत	११	तैलगू	१७०	उर्दू व फ़ारसी	७५	पाली	१४
हिन्दी	११	संस्कृत (नागरी)	१८	संस्कृत	९	तामील	२
उर्दू फ़ारसी	२	संस्कृत (तैलगू)	१४	मराठी	३	बंगला	१
आसामी	१०	कनारी	१७	गुजराती	१	हिन्दी, उर्दू, संस्कृत	०
मुसलमानी बंगला	८	उर्दू, अरबी व फ़ारसी	१३	बंगला	४		
अन्यान्य भाषाओं की	१८७	अन्यान्य भाषाओं की	८३	अन्यान्य भाषाओं की	९३	अन्यान्य भाषाओं की	१५
कुल जोड़	७५५	कुल जोड़	६७४	कुल जोड़	३८८	कुल जोड़	७०

हिन्दीप्रेमियों को यह देख अतीव दुःख होगा कि मद्रास तथा बर्मा प्रान्त से हिन्दी भाषा की एक

भी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई। यद्यपि संस्कृत-भाषा की कृपा से मद्रास प्रान्त में नागरी-लिपि की १८ पुस्तकें निकलीं परन्तु बर्मा में तो वह भी न देखा गया। जो हिन्दी-भाषा भारतवर्ष की राष्ट्र भाषा होने की योग्यता रखती हो, जिस भाषा के पक्षपाती मद्रास प्रान्त के रत्न महात्मा कृष्णस्वामी ऐय्यर, डा० आनन्द कुमार स्वामी सरीखे सज्जन हों, उस भाषा की एक पुस्तक भी मद्रास या बर्मा-प्रान्त से न प्रकाशित हो यह कितने बड़े दुःख की बात है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सेवी तथा सम्मेलन के कार्यकर्त्तागण इस ओर विशेष ध्यान देंगे और व्याख्यानों एवं सभाओं द्वारा इस सर्वमान्य अंश की पूर्ति करेंगे।

यह भी कम दुःख की बात नहीं है कि जिस प्रान्त से हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र प्रकाशित होते हों, जिस प्रान्त के प्रसिद्ध प्रसिद्ध बालक श्रीयुत जस्टिस दिगम्बर चटर्जी, श्रीयुत शारदाचरण मित्र इत्यादि भी इस भाषा को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा मानते हों उस बंगाल प्रान्त से केवल ११ ही पुस्तकें इस भाषा की प्रकाशित हों। मैं आशा करता हूँ कि बंगाल के प्रसिद्ध नगर कलकत्ते को आधुनिक हिन्दी की जन्मभूमि माननेवाले सज्जन अपनी उक्ति को चरितार्थ करने के निमित्त कुछ प्रत्यक्ष कार्य करके हिन्दी भाषा का उपकार करेंगे। यद्यपि युक्तप्रदेश से १६७ पुस्तकें प्रकाशित हुईं तथापि बंगला-साहित्य से मिलान करने पर यह संख्या संतोषदायक नहीं है। बंगाल प्रान्त से जब केवल नाटक-विषयक अच्छी अच्छी ३२ पुस्तकें निकलीं, वहां हमारे प्रदेश से केवल ४ ही अनुवादित हुईं। लाला सीताराम जी को अनेक धन्यवाद हैं जिन्होंने उपर्युक्त चारों नाटक अनुवाद किये हैं। इन नाटकों की प्रथम संस्करण में १२०० प्रतियाँ छापी गई हैं परन्तु बँगला भाषा के नाटकों में २२ नाटकों के प्रथम संस्करण १००० से ५००० तक के हुए हैं। इनमें ९ नाटक ऐसे हैं जिनके २, ३, ४ संस्करण तक हो चुके हैं। केवल पाठ्य पुस्तकों को छोड़ हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्तकें बहुत कम हैं जिनकी प्रकाशित संख्या तीन, चार, हज़ार से विशेष हो, परन्तु बंगला भाषा में पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त भी कई पुस्तकों के जैसे "अमीय पाथ" का ८वाँ संस्करण २००००, "आदर्श बंगला साहित्य पाठ" का नवीन संस्करण २२,५००, "शिशु-शिक्षा" का चतुर्थ संस्करण १५,०००, "बृहत्-साहित्य-प्रवेश" का ५५वाँ संस्करण ६०००, "साहित्य पुस्तक" का ११वाँ संस्करण १२,००० प्रतियों का हुआ है। इसी प्रकार तामील भाषा में भी "सेण्ट मारक्स गास्पल" नामक पुस्तकादिकों के दो दो, तीन तीन संस्करण १०,००० प्रतियों के हुए हैं।

सरस्वती से बढ़ कर हिन्दी भाषा में कोई पत्र नहीं है। योरोप और अमेरिका तक इसकी पहुँच है। परन्तु इसकी कुल ४५०० प्रतियाँ छापी जाती हैं जब कि मद्रास के "यङ्ग सिटिज़न" की ग्राहक संख्या दस हज़ार है। तामील और बंगला भाषा के कितने ही मासिक पत्रों की ग्राहक संख्या छः छः सात सात हज़ार है।

इन सबसे क्या सिद्ध होता है? यही कि हिन्दी वालों में उत्साह, प्रेम, एकता, स्वार्थत्याग इत्यादि गुण कम हैं। जरा जरा सी बातों पर कुपित हो महीनों अख़बारों के कालम रँगेंगे परन्तु यह न होगा कि वही स्थान उत्तम उत्तम लेखों से परिपूर्ण कर अन्यान्य भाषाभाषियों को इसकी उपयोगिता समझा कर राष्ट्रभाषा का प्रचार करें।

आशा है कि हिन्दी साहित्य-मर्मज्ञ इस ओर भी कृपा दृष्टि करेंगे।*

—:o:—

* यह नोट श्रीयुत् सांवलजी ने कृपा कर भेजा है।